Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

643
3

प्रभु दर्शन

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ओ३म्

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

प्रभु-दर्शन

(संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण)

लेखक

दिवंगत महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली-६

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

प्रकाशक :
Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क, दिल्ली-११०००६

मूल्य : 12.00

संस्करण, : १९८७

© गोविन्दराम हासानन्द

मुद्रक : कुमार ऑफसेट प्रिंटिंग प्रेस,
विश्वास नगर—दिल्ली-110032

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रकाशक का निवेदन

पूज्यपाद वीतराग महात्मा श्री आनन्द स्वामी जी महाराज भारत की एक उज्ज्वल विभूति थे। उनकी वाणी और लेखनी दोनों ही बहुत सबल और यशोमयी रहे। उनका जन्म पश्चिमी पंजाब के गुजरात मण्डल-अन्तर्गत, एक ग्राम 'जलालपुर जट्टाँ' में हुआ था। उनके पिताजी कट्टर आर्य थे। उनसे आर्यत्व की भावना और अपने पूर्वजन्म के संस्कारों से लिखने की कला लेकर ये लाहौर आये। 'आर्य-गज़ट' के सम्पादक बने। फिर उन्होंने दैनिक 'मिलाप' का संचालन और सम्पादन आरम्भ किया। उर्दू 'मिलाप' में सफलता प्राप्त करने के उपरान्त उन्होंने 'हिन्दी मिलाप' आरम्भ किया। यह उस समय की बात है, जबकि पंजाब में हिन्दी दैनिक का प्रकाशन बहुत भारी जोखम और साहस का कार्य समझा जाता था। पहले आप खुशहालचन्द नाम से प्रसिद्ध थे। फिर लाला खुशहालचन्द 'ख़ुर्सन्द' कहलाये। फिर खुशहालचन्द 'आनन्द' बने और फिर एक दिन यमुनानगर में पूज्यपाद १०८ श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज से संन्यास की दीक्षा लेकर महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती के रूप में संसार के सामने आये।

अपनी युवा-अवस्था में ही आपने आर्यसमाज में प्रवेश किया। देखते-ही-देखते आर्यसामाजिक क्षेत्रों में तथा देश के राजनैतिक जीवन में, आपने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। स्वर्गीय पंजाब-केसरी श्री लाला लाजपतराय जी और श्री महात्मा हंसराज जी का आपके प्रति अगाध प्रेम और विश्वास था। आपने सेवा के सभी क्षेत्रों में बहुत बड़े-बड़े कार्य किये। सच्चे हृदय से, पूर्ण लग्न से और निरन्तर पुरुषार्थ करके मनुष्य क्या-क्या कर सकता है, इसका उत्तर आपके जीवन से हमें प्राप्त होता है।

आर्यगज़ट, मिलाप, हिन्दी मिलाप आदि अनेक पत्रों के सम्पादक, अनेक ग्रन्थों के लेखक और प्रकाशक, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के मन्त्री एवं प्रधान, श्रीमद्दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलिज कमेटी के माननीय सदस्य, आर्य-सत्याग्रह हैदराबाद के तृतीय सर्वाधिकारी आदि-आदि के रूप में आपने जो-जो

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सेवाएँ कीं, वे अत्यन्त प्रशंसनीय और अनुकरणीय हैं। आपके सुपुत्र श्री रणवीर, संपादक 'मिलाप' (उर्दू) दिल्ली, श्री यश सम्पादक 'हिन्दी-मिलाप' जालन्धर और श्री युद्धवीर सम्पादक 'मिलाप' हैदराबाद दक्षिण, भारत में सामाजिक और राजनैतिक जीवन में अपना-अपना विशेष स्थान रखते हैं।

'प्रभु-दर्शन' आपका एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो कि आपने संन्यास-आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् 'गंगोत्री' के तट पर बैठकर लिखा था। इसमें आपकी लेखन-कला क्रियात्मक ईश्वर-भक्ति के कारण, उच्च पराकाष्ठा को पहुँच गई है, जहाँ केवल एक ऐसा वीतराग योगी ही पहुँच सकता है, जिसने सारी दुनिया को अपनी हथेली पर रखकर गेंद के समान देखा हो।

श्री महात्मा जी ने इस परिवर्द्धित और संशोधित 'प्रभु-दर्शन' के प्रकाशन का आदेश प्रदान करके, हमारा जो सम्मान किया, उसके लिए हम दिवंगत आत्मा के प्रति चिर-ऋणी रहेंगे।

दिल्ली, २७।२।५६ —गोविन्दराम हासानन्द

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

आत्म-निवेदन — पहला अध्याय

आनन्दरूप भगवान् के संसार में दुःख क्यों ? ९
इस प्रश्न के उत्तर में उपनिषद् के ऋषियों की घोषणा ११
ऋषि दयानन्द का आदेश १६

दृढ़ संकल्प — दूसरा अध्याय

प्रभु-दर्शन का पहला साधन : संकल्प २१
संकल्प की महान् शक्ति २२
नई सभ्यता का पाप २३
मानसिक चिन्ता के रोग २३
संकल्प-शक्ति से जीवनधारा २४
डॉ० मार्डन का वक्तव्य २५
पादरी के दाँतों की घटना २७
चिन्ता से एक रात में बाल श्वेत २९
मन-मन्दिर की उपयोगिता ३०
कष्टों से न घबराना तप है ३१
छिनकू भक्त की घटना ३४
हैदराबाद के वीर का संकल्प ३५

तैयारी — तीसरा अध्याय

मनुष्य कौन ? (आर्य की परिभाषा) ३७
उषःकाल से पहले उठो ३८
शरीर बलवान् बनाओ ४०
चरित्र को पवित्र बनाओ ४१
जीवन-स्तर ऊँचा करो ४४
मनुष्य-समाज के योग्य बनो ४५
गृहस्थ-आश्रम पुण्य धाम है ४६
इस आश्रम को पुण्य-धाम बनाने के लिए ग्यारह वैदिक आदेश ४८

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

स्त्रियों से दुर्व्यवहार क्यों ? ५०
गाय तुम्हारा घर सुधार देगी ५२

मन्दिर में प्रवेश — चौथा अध्याय

मन्दिर में जाने का अधिकारी कौन ? ५३
दुनिया की सारी समस्याएँ सुलझानेवाले यम ५४
अहिंसा किसे कहते हैं ? ५४
हिंसा से बचने का सीधा मार्ग ५५
सत्य का स्वरूप क्या है ? ५८
अस्तेय से दुनिया का कल्याण ६०
ब्रह्मचर्य ६२
प्रतिदिन ६० हज़ार व्यक्ति बढ़ रहे हैं ६५
अपरिग्रह ६६
पूंजीवाद और वर्गवाद का फल ६७
सार्वभौम महाव्रत ६८
पाँच नियम ६९
शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय ६९-७२
गायत्री की महिमा तथा जप ७४
स्त्रियों को गायत्री जप का अधिकार ७६
ईश्वर-प्रणिधान ७९

किसके दर्शन ? — पाँचवाँ अध्याय

वेद का आदेश ८२
दर्शन के दो प्रकार ८६
सूर्य की घोषणा सुनो ! ८७
नदियाँ और मरुस्थल क्या कहते हैं ? ८७
गर्जते मेघ—गम्भीर समुद्र ८८
और यह ऊपर की दुनिया ८९
यहाँ से ऊपर की दुनिया ९०

आत्मा की तलाश — छठा अध्याय

शरीर से पृथक् ९२
तालाब में कंकर न फेंको ! ९५
भक्त सूरदास की वीरता और अन्याय ९६
आहार-शुद्धि ९७

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

महाकठिन मार्ग — सातवाँ अध्याय

भूसे की नाईं भरी गाड़ी — ९९
कुएँ में डोर-लोटा — १००
धन कमाने से क्या होता है ? — १०१
भोग भोगने से रोग नहीं मिटता — १०३
संसारी लोग किस भ्रम में पड़े हैं ? — १०४
संसारी सम्बन्ध क्या हैं ? — १०४
ये संसारी सम्बन्ध और पदार्थ प्यारे क्यों लगते हैं ? — १०६
श्रवण, मनन, निदिध्यासन — १०८-१०९
गुरु की तलाश — १०९
आत्मा का पता — १११
समझने की आवश्यक बात — १११

प्रभु-दर्शन — आठवाँ अध्याय

प्रभु के दर्शन का पता — ११३
वेद और उपनिषद् में उसका पता — ११३
सचाई, तप, ज्ञान और ब्रह्मचर्य — ११६
ब्रह्मपुर के दर्शन — ११७
उपासना कैसे करें ? — १२१
ओम् के द्वारा दर्शन — १२३
ओम् के द्वारा दर्शन कैसे ? — १२४
ओम् की महिमा — १२५
उपासना के लिए स्थान — १३१
अपने घर में — १३४
प्रभु-दर्शन के सम्बन्ध में ऋषियों का अनुभव — १३५
लगे रहो और प्रतीक्षा करो — १३७

कौन दर्शन पाता है ? — नौवाँ अध्याय

आत्म-बल से हीन नहीं — १३८
आत्म-बलवाले — १३९
तत्त्व-ज्ञान, मन-संयम, वासना-क्षय — १४०
साधना का दृढ़ संकल्प — १४१
साधना के दश साधन — १४१
संकल्प का भी अन्त — १४४

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

साधक की पुकार — दसवाँ अध्याय

महाराज ! तेरी कृपा के बिना — १४६
टेर कब सुनोगे ? — १४७
भक्ति से भरे गीत सुन प्यारे ! — १४९
हो गई कृपा-दृष्टि प्रभु की — १५३
आत्म-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व का मिलाप — १५४

अनुभव तथा विज्ञान — ग्यारहवाँ अध्याय

गायत्री (ओं भूर्भुवः स्वः) — १५५
ओम् द्वारा सिद्धि — १५५
काम-वासना पर विजय — १५६
मौन तथा उपवास — १५६
योगिराज स्वामी व्यासदेव जी के अनुभव — १५७
आसन बढ़ाने की विधि — १५७
प्राणायाम — १५८
प्राणायाम बढ़ाने का क्रम — १५९
प्रत्याहार की सिद्धि — १६०
धारणा कैसे करें ? — १६१
सुषुम्णा की बात — १६१
ज्योति प्रकट — १६२
ध्यान की बात — १६८
समाधि — १६८
तमःप्रधान समाधि — १६९
रजःप्रधान समाधि — १७०
सत्त्वप्रधान समाधि — १७१
ज्ञान के दो प्रमुख केन्द्र — १७१
ब्रह्मरन्ध्र में — १७१
ब्रह्मरन्ध्र में १७ तत्त्व — १७२
प्रकृति के पदार्थों का ज्ञान — १७४
ब्रह्मरन्ध्र की ज्योतियाँ — १७५
ब्रह्मरन्ध्र के पदार्थ — १७९
हृदय-देश में — १८०
आत्मा के दर्शन — १८३
मोक्ष — १८४

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ओ३म्

अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम् ।
(याज्ञवल्क्यसंहिता)
योग द्वारा आत्म-दर्शन ही परम धर्म है ।

१. आत्म-निवेदन

(१९३९ से १९५०)

ग्यारह बरस बीत गये । ग्यारह बरस पहले मैं गुलबर्गा (हैदरावाद दक्षिण) के एक कारावास का बेबसबन्दी था । ग्यारहबरसबाद मैं संसार के रमणीकतम प्रदेश का स्वच्छन्द पंछी हूँ । कर्त्तव्य की जो पुकार मुझे काराओं के भीतर खींच ले गई थी, वही पुकार मुझे इन उतुङ्ग हिम-आच्छादित गिरि-शिखरों पर विचरने के लिए विवश कर रही है। हैदराबाद की निज़ामशाही ने जनता के नागरिक तथा धार्मिक अधिकारों को चुनौती दी थी । आर्यसमाज ने इस चुनौती को स्वीकार करते हुए अपने हज़ारों वीरों को इस धर्म-संग्राम में जूझने का आदेश दिया था । इन वीरों के साथ आहुति देनेवालों में मैं भी एक सैनिक था । हिंसात्मक संग्राम का सैनिक तलवार से तलवार को रोकता है, परन्तु हमारा संग्राम अहिंसात्मक था । अहिंसात्मक संग्राम का सैनिक तलवार की धार पर चलता है । गुलबर्गा जेल तलवार थी, इसकी धार पर चलते हुए मैंने जो कुछ पाया, उसे अपने तक ही सीमित रखता तो स्वार्थपरता का दोषी होता । स्वर्गीय पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी के संसर्ग से मैंने जो पाया, वह 'प्रभु-भक्ति' के रूप में आस्तिक जनता को भेंट कर दिया । इस पुस्तक का जनता ने हार्दिक स्वागत किया । अब तक इसके दस संस्करण छप चुके हैं ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

'प्रभु-भक्ति' राह थी, प्रभु को पाने की। प्रभु अर्थात् अनन्त, असीम, अकथ, आनन्द, सुख, समृद्धि, शान्ति। परन्तु इन ग्यारह वर्षों में संसार आनन्द तथा सुख की राह पर नहीं, क्लेश और दुःख की राह पर बढ़ा है। यह नहीं कि संसार ने आनन्द और सुख के मार्ग पर बढ़ने का प्रयत्न नहीं किया; इन ग्यारह वर्षों में घटी घटनाओं को इतिहास के पन्नों में कुरेदिये तो केवल परिवर्तन ही नहीं, अनेक महान् क्रान्तियाँ झाँकती हुई झलकती हैं। इन ग्यारह वर्षों में तो दुनिया ही बदल गई। गुलामी की दलदल से निकलकर अनेकों देश आज़ादी के शिखर पर पहुँच गए। अनेक अन्य देश अपनी स्वाधीनता खोकर पराधीनता के गढ़े में जा गिरे। राज बदले, प्रजा बदली, शासक बदले, शासित भी बदल गये। इन्हीं ग्यारह वर्षों में संसार का दूसरा महायुद्ध हुआ। वह महायुद्ध भी एक प्रयत्न था—संसार में शान्ति स्थापित करने का। भौतिक विज्ञान के पाश्चात्य पुजारियों की अद्भुत धारणा है कि युद्ध से शान्ति हो सकती है; मृत्यु से जीवन मिल सकता है। भारत में भी कुछ ऐसी ही घटना घटी। कुछ लोगों ने समझा, बटवारे से मिलाप हो सकता है। और भी लोग हैं, जो सर्वनाश से नवसृष्टि की सम्भावना करते हैं। यह भूलकर कि वे कल तक दूसरे के साथी थे, उन्होंने कन्धे से कन्धा मिलाकर एक साँझे शत्रु को पराजित किया था, वे नई गुट-बन्दियों के साथ कृत्रिम प्रलय की तैयारियाँ कर रहे हैं।

राह ग़लत हो, प्रयत्न अवश्य हुआ। परिणाम—'मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की।' संसार के कष्ट कम नहीं हुए; बढ़े। भुखमरी, अन्न-संकट, बाढ़ और भूकम्प तो दैवी प्रकोप हैं। मानव के अपने मन में असन्तोष, ईर्ष्या और वैमनस्य की इतनी आग धधकी कि सारा संसार इसकी लपेट में आ गया। शारीरिक और आत्मिक, दोनों तरह के कष्ट बढ़ गए।

इसका कारण ?

निश्चित रूप में यह है कि संसार के प्रयत्न ग़लत दिशा में हैं। इन प्रयत्नों में कोई मौलिक त्रुटि है, अन्यथा इन भागीरथ प्रयत्नों के बाद, जिनके लिए मानव को इतना अधिक मोल चुकाना पड़ा, संसार में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

शान्ति हो जानी चाहिए थी। मैंने इस बात पर विचार किया। विचार करते हुए अनुभव किया कि सही मार्ग खोजने के लिए जिस तप की आवश्यकता है, मुझमें उसकी कमी है। तब मैंने संन्यास लेने का निश्चय किया। पिछले बरस के आखिरी महीने की पहली तारीख को दर्शनाचार्य श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के आश्रम यमुनानगर, जगाधरी में पहुँचकर मैंने धन, यश और परिवार की इच्छा को त्यागकर संन्यास की दीक्षा ले ली और आत्मदर्शन तथा आत्मचिन्तन के लिए देहरादून से तीन मील के अन्तर पर नाला-पानी के घने जंगल 'तपोवन' में जा बैठा। इस घने जंगल में मैंने पहले भी कई बार साधना की है। इस बार एक दृढ़ संकल्प के साथ मैं साधनालीन हुआ। छः महीने तक निरन्तर साधना करते हुए मैंने देश की वर्तमान अवस्था का अध्ययन किया। देश के बाहर भी निगाह दौड़ाई। आर्यसमाज, सनातन धर्म, कांग्रेस, हिन्दू महासभा, समाजवादी दल, साम्यवादी दल आदि सभी आन्दोलनों तथा विचारधाराओं का विश्लेषण किया। संसार की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ—अमेरिका, रूस, ब्रिटेन आदि के कार्यक्रमों को तर्क के तराज़ू पर तोला और बुद्धि की कसौटी पर परखा। सभी का ध्येय एक है—संसार में शान्ति का राज्य हो। इसी कामना से सभी प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु सफलता किसी को भी नहीं मिल रही। यदि कभी क्षणिक सफलता मिलती भी है, तो असफलता के दुर्गन्धयुक्त कीचड़ से लथपथ। क्या संसार में सफलता मिल नहीं सकती? क्या संसार दुःख का दूसरा नाम है? क्या सुख और शान्ति काल्पनिक जगत् के स्वप्न-मात्र हैं?

ज्ञान के अपूर्व भण्डार उपनिषदों के ग्रन्थकार ऋषियों का, जिन्होंनें संसार की समस्त उलझनों को सुलझाया है, कहना है कि इस सृष्टि का रचनेवाला भगवान् आनन्दस्वरूप है। उसके घर में आनन्द ही आनन्द, मोद-प्रमोद और उल्लास ही उल्लास है, खुशियाँ ही खुशियाँ। तब आनन्दमय भगवान् की इस सृष्टि में करुण क्रन्दन, रौरव रुदन और हाहाकार क्यों है? कष्ट और क्लेश क्यों हैं? अच्छे लोगों के पुरुषार्थ भी सफल क्यों नहीं होते?

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यह प्रश्न निरन्तर मेरे मन में था—तब भी जब मैं साधना में रहता और तब भी जब मैं शास्त्रों का मनन करता। मैं वेद, उपनिषद्, दर्शन सभी के मन्त्रों तथा सूत्रों में इस प्रश्न का उत्तर खोजता रहा। तपोवन में श्री पण्डित रामअवतार जी वेदतीर्थ से मैंने योग-दर्शन पढ़ा। ऋषि-केश में श्री स्वामी ब्रह्मचारी चैतन्यस्वरूप के चरणों में सांख्यकारिका का अध्ययन किया। सागर-तल से दस हज़ार फ़ीट की ऊंचाई पर गंगोत्री में योगनिष्णात योगिराज ब्रह्मचारी स्वामी व्यासदेव जी की पवित्र वाणी से सांख्यदर्शन की शिक्षा प्राप्त की। इन सब अवसरों और स्थानों पर मेरे मन में यही प्रश्न गूंजता रहा। मैं इसी उलझन को सुलझाने में लगा रहा। हर बार, हर जगह, हर पुस्तक में, एक ही उत्तर मिला—आत्म-दर्शन तथा प्रभु-दर्शन के बिना लोक-सेवा अथवा विश्व-कल्याण के सब प्रयत्न असफल रहेंगे।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने आर्यसमाज के नियमों में आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना बतलाया है। इसका साधन भी उन्होंने बतलाया—"शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।" आर्यसमाज के नेताओं तथा सेवकों ने शारीरिक तथा सामाजिक उन्नति के लिए भरसक प्रयत्न किये। समाज-सुधार तथा देश-उद्धार की अनेक योजनाएँ भी बनाईं। राष्ट्र-निर्माण के लिए गुरुकुल, कॉलिज, स्कूल, पाठशालाएँ, अनाथालय, विधवाश्रम और शिल्प-विद्यालय खोले, पीड़ितों-दलितों की सहायता का काम किया। बड़े लोगों ने पूर्ण त्याग करके अपने जीवन इसी उद्देश्य की पूर्ति में लगा दिये। धन्य हैं वे लोग, जिन्होंने समाज तथा देश-सेवा में जीवन-आहुतियाँ दे डालीं। इस मार्ग पर बढ़ते हुए यदि राह में अंग्रेज़ों के बिछाये काँटे भी आये तो निर्भयता से आगे बढ़ते रहे, चिन्ता नहीं की। यदि किसी ने छुरे, लाठी, पिस्तौल से प्राणों का अन्त कर दिया, तो भी परवाह नहीं की। ७६ से अधिक महानुभावों ने इसी प्रकार अपने जीवन-प्राणों की आहुति दे डाली। उन शहीदों और सेवकों की स्मृति में माथा अपने-आप झुक जाता है। परन्तु इस शारीरिक और सामाजिक उन्नति के साथ यदि आत्मिक उन्नति की ओर भी इतना ही

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ध्यान दिया जाता तो आज जो असन्तोष, उदासीनता और निराशा दिखाई देती है, वह दिखाई न देती। आत्मिक उन्नति से जो सफलता प्राप्त हो सकती थी, वह भी प्राप्त हो जाती। महर्षि ने तो सामाजिक उन्नति का कार्य तीसरे स्थान पर रखा था और आत्मिक उन्नति को दूसरा स्थान दिया था, परन्तु आर्य कार्यकर्ताओं ने आत्मा की ओर अधिक ध्यान न देकर, सामाजिक कार्यों ही की ओर अधिक ध्यान दिया। क्रम-विरुद्ध कार्य करने का जो परिणाम हो सकता था, वही हुआ। आर्यसमाज के प्रयत्नों से शारीरिक तथा सामाजिक उन्नति तो कुछ हो गई, परन्तु कुछ ध्येय प्राप्त न हो सका, मानव अशान्त ही रहा।

यही अवस्था देश की सबसे बड़ी राजनैतिक संस्था 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' की हुई। कांग्रेस ने देश को सुखी बनाने के लिए बहुत बड़े आन्दोलन को जन्म दिया। कांग्रेस का उद्देश्य आज़ादी प्राप्त करना था। आज़ादी अर्थ-हीन है, यदि उससे देश सुखी न हो। आज़ादी प्राप्त करने के लिए भारत के सभी लोगों ने बड़े-बड़े बलिदान दिये। स्वतन्त्रता के तुमुल संग्राम में नवयुवक फाँसी के रस्सों पर झूल गये। देवियों ने अपने पतियों की आहुतियाँ देकर आजीवन घोर यातनाएँ सहन कीं। बच्चों और बूढ़ों ने कष्टों तथा विपत्तियों को निमन्त्रण दिया। सहस्रों देशवासी इस राह पर चलते-चलते मौत की नींद सो गए, अपना सर्वस्व लुटा बैठे। यद्यपि हमारा यह संग्राम प्रायः अहिंसात्मक था, तथापि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए हमें किसी देश से कम बलिदान नहीं देने पड़े। अन्तिम बलिदान तो महान् था, जिसका उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता। गुलामी से छुटकारा पाने के लिए एक करोड़ ५० लाख लोग उजड़-उखड़ गए। हज़ारों आततायियों के हाथों मारे गए। माताओं और बहनों की लाज लुटी। जीवन-भर की कमाई खत्म हो गई। परन्तु जब देश स्वतन्त्र हुआ तो देशवासी पहले से भी अधिक दुःखी हो गये। भारत का सौभाग्य है कि उसे इतने अच्छे नेता मिले। इन नेताओं की संसार-भर में मान्यता है, परन्तु हमारा देश इतना दुःखी हो गया है कि वह इन नेताओं पर भी अविश्वास

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

करनें लगा है। हमारे नेता दिन-रात प्रयत्न कर रहे हैं कि दुःख और असन्तोष की मात्रा कम हो जाए, उजड़े-उखड़े लोग बस जायें, उपद्रव रुक जाएँ, अनाज की कमी दूर हो जाए, उलझनें सुलझ जायें, परन्तु व्यर्थ; सफलता की बजाय असफलता ही मिल रही है। इसका कारण यह है कि इन्होंने सुख के स्रोत प्रभु को भुला दिया है।

संसार में अनेकों विचार-धाराएँ सफलता प्राप्त करने की चेष्टा कर रही हैं। पूंजीवादी और वर्गवादी दोनों एक-दूसरे से पहले सफलता प्राप्त करना चाहते हैं। इस होड़ में वे अपना सब-कुछ दाँव पर लगा रहे हैं। क्या उन्हें सफलता मिल रही है ? नहीं। वे तो अपनी ही पैदा की हुई उलझनों में उलझकर रह गए हैं। उनकी दृष्टि तो केवल प्रकृति (भौतिकता) की ओर है। आत्मा की ओर उनका ध्यान ही नहीं। केवल प्रकृति का पुजारी, संसार को सुखी नहीं कर सकता। अत: वे भी नहीं कर सके।

देश में अथवा विदेश में, इस समय जितने भी बड़े-बड़े आन्दोलन हैं, उनका ध्यान केवल शरीर की ओर है। आत्मा की उन्होंने सर्वथा अवहेलना की है। यही कारण है कि इतने पुरुषार्थ और परिश्रम के बाद भी संसार की नैया दुःख के सागर में डोल रही है। इस मौलिक तथ्य की ओर लगभग सभी उपनिषदों में अनेक स्थलों पर बार-बार संकेत किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् ३।८।१० में याज्ञवल्क्य गार्गी से कहते हैं—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिल्लोके जुहोति, यजते, तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद् भवति। यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणोऽथ। य एतदक्षरं गार्गि ! विदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः ।।

"हे गार्गि ! जो इस अक्षर (अविनाशी पारब्रह्म परमात्मा) को जाने बिना इस लोक में होम करता, यज्ञ करता है (परोकार में तत्पर होता है) वा तप तपता है (दुनिया के कल्याण या अपने लिए कष्ट सहन करता है), वह चाहे सहस्र वर्ष ऐसा करता रहे, पर वह सब-कुछ इसका अन्तवाला ही होता है। जो इस अक्षर (आत्मा) को जाने बिना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हे गार्गि ! इस दुनिया से चल देता है, वह कृपण (दया का पात्र) है। हाँ, जो इस अक्षर (आत्मा) को जानकर हे गार्गि ! इस दुनिया से चलता है, वह सच्चा ब्राह्मण (विद्वान्) है।"

शुक्ल यजुर्वेद की काण्वशाखा की इसी उपनिषद् में आदेश दिया गया है—

"जो अपनी असली दुनिया (आत्मा) को देखे बिना, इस दुनिया से चल देता है, तब वह दुनिया (आत्मा) इसको अपने भोग नहीं भुगाती। जैसे वेद बिना जाने वा और कोई कर्म बिना किये (अपना फल नहीं भुगाता) और कि इस (आत्मा) को न जाननेवाला यदि बहुत बड़ा पुण्य कर्म भी करे, तो वह उसका अन्ततः क्षीण हो जाता है (नष्ट हो जाता है) सो चाहिए कि आत्मा ही को अपना असली लोक समझकर उपासे। वह जो आत्मा को ही अपना असली लोक समझकर उपासता है, उसका कर्म (पुण्य, पुरुषार्थ, तप, यज्ञ, परोपकार, राजनीति अथवा धार्मिक कार्य) क्षीण नहीं होता, क्योंकि वह इसी आत्मा से जो-जो चाहता है रच लेता हैं।" (१।४।१५)

इसी प्रकार की बात छान्दोग्योपनिषद् में प्रजापति ने कही है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में इसी तथ्य को अत्यन्त सुन्दर और कवितामय ढंग से वर्णित किया गया है। कहा है—

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ ६ । २० ॥

"जब लोग चमड़े की तरह आकाश को लपेट सकेंगे, तब परमात्मा को न जानकर भी दुःख का अन्त हो सकेगा।"

जिस तरह यह असम्भव है कि आप आकाश को चटाई या चमड़े की तरह लपेट लें, उसी तरह यह भी असम्भव है कि प्रभु-दर्शन के बिना दुःखों का अन्त हो जाये। परन्तु दुनिया आकाश को चटाई और चमड़े की तरह अपने शरीर के गिर्द लपेटने का प्रयत्न कर रही है। आत्मा को भुलाकर अनात्मक वस्तुओं के पीछे भाग रही है। अविद्या ने मानव को अन्धा कर रखा है। भ्रमजाल इतना गहरा है कि उसमें सुविचार और सुपथ उलझकर रह गए हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हम सफलता तो चाहते हैं, परन्तु सफलता की कुञ्जी की ओर ध्यान नहीं देते। हम शान्ति चाहते हैं, परन्तु शान्ति के आधार को भुला दिया है। सफलता और शान्ति के वास्तविक साधन आत्म-दर्शन को भूलकर हम अन्य साधनों में व्यस्त हैं। यही कारण है कि इतने परिश्रम और पुरुषार्थ के बावजूद हम इस ध्येय से कोसों दूर हैं। न केवल दूर हैं, अपितु मार्ग से भटक गए हैं। शान्ति के नाम पर भीषण विनाशकारी शस्त्रास्त्र तैयार कर रहे हैं। संसार के समस्त वैज्ञानिकों का कुल ज्ञान और विज्ञान इस प्रयत्न में खर्च हो रहा है कि कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक प्राणियों का संहार हो सके। जो देश अपने-आपको आधुनिक काल में सभ्यता और विज्ञान का नेता समझते हैं, वे देश भी आत्मा से विमुख होने के कारण अशान्ति, दुःख और कष्ट-क्लेशों का कारण बन रहे हैं। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतःसुखम्॥ गीता २। ३३॥

"जिसकी बुद्धि प्रभु से युक्त नहीं है, ऐसे अयुक्त पुरुष के मन में स्थिरता नहीं होती और जिसका मन अशान्त है, उसे सुख कहाँ?"

केवल स्थिर-शान्त मन वाला व्यक्ति ही सुख-लाभ नहीं करता, अपितु समाज, राष्ट्र, देश और समूचे संसार के लिए भी आवश्यक है कि वह सुख-लाभ के लिए स्थिरता और शान्ति-लाभ करे। जिन राज्यों में अस्थिरता है, अशान्ति है, असन्तोष है, वे न तो उन्नति कर सकते हैं और न सुख पा सकते हैं। यह तत्त्व है सफलता और शान्ति का। इस तत्त्व को जाने बिना समाज-सेवा, देश-सेवा, राष्ट्र-सेवा, परिवार-सेवा कोई भी काम कर लीजिए, आपको कभी सिद्धि प्राप्त न होगी। अपने अनुभव के आधार पर मेरा यह अटल विश्वास है कि आत्म-दर्शन तथा प्रभु-दर्शन के सिवा सुख और शान्ति का कोई मार्ग नहीं है।

आत्म-दर्शन का महत्त्व और उसकी अनिवार्य आवश्यकता महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' में वर्णन की है। महर्षि अपने इस महान् ग्रन्थ के छठे समुल्लास में लिखते हैं—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"(राज्य के) सब सभासद् और सभापति (मन्त्री और प्रधानमन्त्री) इन्द्रियों को जीत के अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्तें और अधर्म से हटे-हटाए रहें। इसलिए रात-दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण, और शरीर-रूपी प्रजा है इस) को जीते बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता।"

स्पष्ट शब्दों में ऋषि ने राजनीति में भाग लेनेवालों, राज्य-मन्त्रियों, प्रधान-मन्त्रियों और राष्ट्रपति को भी आत्मदर्शी, योगाभ्यासी तथा जितेन्द्रिय होने का आदेश दिया है। आज भारत स्वतन्त्र है और स्वतन्त्र देश सुखी होना चाहिए, परन्तु इसकी दुःख की मात्रा कुछ बढ़ ही गई है। यदि राज्य-कर्मचारी योगाभ्यासी और प्रभु के प्यारे हों, तो फिर यहाँ वास्तविक रामराज्य स्थापित हो सके। अभी तो सब लोग माया के पीछे भाग रहे हैं। उन्हें केवल शरीर का ध्यान है। आत्मा लोप हो गया है। महाभारत के शान्ति-पर्व में उनतीसवें अध्याय में रामराज्य का जो वर्णन किया गया है वह इस प्रकार है—

विधवा यस्य विषये नाऽनाथाः कश्चिन्नाभवन्।
सदैवासीत्पितृसमो रामो राज्यं यदन्वशात्॥ ५२॥
कालवर्षी च पर्यजन्यः सस्यानि समपादयत्।
नित्यं सुभिक्षमेवासीद्रामे राज्यं प्रशासति॥ ५३॥
प्राणिनो नाप्सु मज्जन्ति नान्यथा पावकोऽदहत्।
रुजा भयं न तत्रासीद्रामे राज्यं प्रशासति॥ ५४॥

"श्री रामचन्द्र जी के राज्य-शासन में कोई स्त्री विधवा नहीं थी। कोई अनाथ न था। समय पर वर्षा होती थी। अन्न भी यथासमय होते थे। उनके राज्य में किसी प्रकार का दुर्भिक्ष नहीं हुआ। किसी की पानी में डूबकर या आग में भस्म होकर मृत्यु नहीं होती थी और न किसी अन्य प्रकार का रोग फैलता था।"

इसका मूल कारण यही था कि भगवान् राम के राज्य में ब्रह्मज्ञानी, योगाभ्यासी, आत्मदर्शी अधिकारी राज्य-प्रबन्ध करते थे।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार छान्दोग्य-उपनिषद् में केकय प्रदेश के राजा अश्वपति का वर्णन आता है, जिससे ब्राह्मण और ऋषि लोग परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते थे। वह ब्रह्मज्ञाता आत्मदर्शी राजा अश्वपति घोषणा करता है—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नाऽनाहिताग्निर्नाऽविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥
छा० उ० ५।११।५॥

"मेरे देश में कोई चोर नहीं, कोई कंजूस नहीं, शराब पीनेवाला नहीं, अग्न्याधान (प्रतिदिन हवन-यज्ञ के लिए घर में अग्नि की स्थापना) से शून्य कोई नहीं, विद्या से हीन नहीं, व्यभिचारी नहीं, व्यभिचारिणी स्त्री कहां?"

उद्देश्य हमारा भी यही है कि हमारे देश में ऐसी ही व्यवस्था स्थापित हो जाए कि न कोई चोर हो न कंजूस, कोई शराब पीनेवाला न हो, न व्यभिचारी। परन्तु हम वे साधन अपनाने से कतराते हैं, जिनके द्वारा भगवान् राम और राजा अश्वपति ने धरती पर स्वर्ग बना दिया था। यह व्यवस्था आत्मदर्शी और योगाभ्यासी शासकों के शासन में ही हो सकती है। यह एक अनुभूत प्रयोग है। इस नुस्खे का हमारे पूर्वजों ने केवल आविष्कार ही नहीं किया, अपितु समाज और शासन की प्रयोगशाला में इसका सफल प्रयोग भी किया। तब क्या अब भी यह आवश्यक नहीं कि इधर-उधर भटकने के बजाय सिद्धि और सफलता के इसी निश्चित मार्ग को अपनाया जाये?

यह अनुभूत प्रयोग केवल शासकों के लिए ही नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। आप कोई भी काम करते हों—व्यापारी हों या ठेकेदार, मिल-मालिक हों या मज़दूर, रेल के बड़े अधिकारी हों या स्टेशन के कुली, सम्पादक हों या वकील, ज़मींदार हों या किसान, सेना में हों या सिविल विभाग में, धनी हों या निर्धन, कुछ भी हों, कहीं भी हों, किसी भी अवस्था में हों—बालक, युवक, वृद्ध, सभी स्त्री-पुरुषों के लिए मनोरथ-प्राप्ति का यही एक मार्ग है। जीवन-संग्राम में विजयी होने का

Satya Vrat Shastri Collection

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इससे बेहतर और कोई अस्त्र नहीं है। आत्मदर्शी की विजय क्षणिक नहीं होती, वह स्थायी और सच्ची होती है।

आज से ग्यारह वर्ष पहले मैंने "प्रभुभक्ति" के मार्ग की ओर संकेत किया था। आज उसी क्रम की दूसरी कड़ी "प्रभु-दर्शन" भेंट कर रहा हूँ। यह पुस्तक लिखने का उद्देश्य केवल यही है कि संसार और समाज का ध्यान उस तत्त्व की ओर आकर्षित किया जा सके, जिसमें सफलता और शान्ति का रहस्य निहित है। मेरी निश्चित धारणा है कि यह लोक-परलोक दोनों को सुधारनेवाला है। सारे कष्ट-क्लेशों को काटकर सुख और समृद्धि को देनेवाला हैं। संसार नास्तिकता के गहरे गढ़े की ओर अग्रसर हो रहा हैं। इससे बचने का एक ही मार्ग है कि हाथ में आत्म-दर्शन और प्रभु-दर्शन की प्रकाश-ज्योति थाम ली जाये। ऋग्वेद में कहा है—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥ ऋ० १। २२। २०॥

"उस व्यापक परमेश्वर के श्रेष्ठ रूप को ज्ञानी पुरुष सदैव देखते हैं, जैसे द्युलोक में व्याप्त सूर्य को देखते हैं।"

यदि कुछ व्यक्ति भी इस प्रकाश को ग्रहण कर सके तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा।

यह पुस्तक लिखने में मैंने निम्नलिखित पवित्र ग्रन्थों तथा पुस्तकों से सहायता ली है। इनका मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

१. चारों वेद
२. ईशोपनिषद
३. प्रश्न उपनिषद्
४. कठ उपनिषद्
५. मुण्डक उपनिषद्
६. ऐतरेय उपनिषद्
७. तैत्तिरीय उपनिषद्
८. छान्दोग्य उपनिषद्
९. बृहदारण्यक उपनिषद्
१०. श्वेताश्वतर उपनिषद्
११. महोपनिषद्
१२. मनुस्मृति
१३. सांख्य-दर्शन
१४. महाभारत
१५. योग-दर्शन
१६. गीता
१७. देवी भागवत
१८. सत्यार्थप्रकाश

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

१९. ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका
२०. शतपथ ब्राह्मण
२१. उपनिषदों की भूमिका
२२. उपनिषदों की शिक्षा
२३. वेद-रहस्य
२४. वेद-सार
२५. स्वाध्याय-यज्ञ
२६. वैदिक वीर गर्जना
२७. ओंकार-निर्णय
२८. पीस, पॉवर एण्ड प्लैण्टी (अंग्रेज़ी)
२९. महानिर्वाण तन्त्र
३०. योगवासिष्ठ
३१. सावित्री प्रकाश
३२. आर्य जीवन
३३. दिव्य-जीवन
३४. पंचदशी

अन्त में मैं प्रभु और गुरुचरणों में प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा और सहायता से यह ग्रन्थ सम्पन्न हुआ है।

—आनन्द स्वामी सरस्वती

योग-निकेतन
गंगोत्तरी
भाद्रपद कृष्ण-जन्माष्टमी २००७

□

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो।
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम्॥
[साम० ८।१]

मार्ग दिखानेवाले, प्रकाशस्वरूप प्रभो ! अतिबल, ओज, तेज और ज्ञानमय विचारधारा का धन हमें दो और इसका मार्ग भी जतलाओ।

२. दृढ़ संकल्प

संकल्प की शक्ति महान् है।

यदि संकल्प दृढ़ हो तो यह शक्ति अजेय है। यदि संकल्प सत्य और शिव भी हो, तो करबद्ध सफलता चरण चूमती है। संकल्प और तद्वत् कर्म मानव को संसार का स्वामी बना देते हैं। शाण्डिल्य ऋषि के शब्दों में 'क्रतुमयः पुरुषः' और 'कृतं लोकं पुरुषोऽभिजायते' अर्थात् पुरुष अपने इरादों का बना हुआ है और अपने ही रचे हुए इस संसार में वह जन्म लेता है। पिप्पलाद ऋषि का भी यही कथन है। प्रश्नोपनिषद् के तीसरे प्रश्न के उत्तर में ऋषि कहते हैं—

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः।
सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति॥ ३।१०॥

"यह आत्मा जिस संकल्पवाला होता है, उस संकल्प के साथ मुख्य प्राण में स्थिर हो जाता है। मुख्य प्राण तेज से युक्त हो, मन इन्द्रियों से युक्त (जीवात्मा को) उसके संकल्पों के अनुसार भिन्न-भिन्न लोकों अथवा योनियों में ले जाता है।"

गीता का भी आदेश है कि अन्त समय आत्मा का जैसा संकल्प होता है, इसका मन जिस भाव का चिन्तन करता है, वह वैसे ही संसार को प्राप्त कर लेता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

संकल्प अर्थात् धारणा, विचार, भावना। जैसे आपके मन के विचार और भावनाएँ हैं, आपका वातावरण वैसा ही बनता चला जायेगा। यह वातावरण आपके जीवन को, आपके परिवार को, आपके समाज और देश को, राष्ट्र और संसार को विशेष साँचों में ढाल देता है। आखिर यह सब-कुछ क्या है ? कुछ संकल्प, कुछ विकल्प। संकल्प-विकल्प के अनुरूप आप प्रभावित होते हैं, आपके सम्बन्धी और मित्र प्रभावित होते हैं। यदि आपके संकल्प में पवित्रता, आशा, उल्लास, प्रेम, प्रसन्नता और उत्साह एवं आत्मविश्वास की भावनाएँ हैं तो आपके अपने चारों ओर आपको यही कुछ दिखाई देगा। आपका वातावरण इन्हीं साँचों में ढलेगा। यदि आपके संकल्प में नीचता, निराशा, घृणा, चिन्ता, राग, वैमनस्य, शत्रुता और निरुत्साह की भावनाएँ हैं, तो लाख प्रयत्न करने पर भी आप इन्हीं से घिरे रहेंगे। केवल प्रभु-दर्शन के लिए ही नहीं, किसी भी शुभ काम में सफलता प्राप्त करने के लिए ज़रूरी है कि संकल्प दृढ़, सत्य और शिव हो। मेरा विश्वास है कि जिसका मन रोगी नहीं, उसका तन कभी रोगी नहीं होता। जिसका मन हँसता है, उसके होंठ कभी नहीं रोते। तन बड़ा दीखता है, परन्तु मन बहुत बलवान् है। अस्वस्थ तन में स्वस्थ मन तो रह सकता है, परन्तु अस्वस्थ मन तन को कभी स्वस्थ नहीं रहने देता। छान्दोग्य-उपनिषद् में स्पष्ट कहा है कि दृढ़ संकल्पवाला पुरुष ११६ वर्षों तक जीवित रह सकता है। इसका कोई गूढ़ रहस्य नहीं, साधारण ज्ञान है कि पुरुष अपने-आपको यज्ञ-रूप बनाने का दृढ़ संकल्प करे। वह यज्ञरूप बन जाये। पुरुष यज्ञ ही तो है ! "पुरुषो वाव यज्ञः।" अपने-आपको यज्ञरूप समझकर पुरुष संकल्प करे कि जब तक जीवन का यज्ञ पूर्ण नहीं हो जाता, तब तक मैं रोगी नहीं होऊँगा; दुःखी नहीं होऊँगा। ऐसे दृढ़ संकल्पवाले पुरुष के समीप रोग और दुःख क्या, मृत्यु भी नहीं आती। इन सबको परास्त कर वह यज्ञ को पूर्ण कर लेता है। यह कोरी कल्पना ही नहीं, इतिहास की एक घटना है। महिदास ऐतरेय को भीषण रोग ने आ दबाया। उसका तन रोगी हो गया, परन्तु मन स्वस्थ रहा। उसने रोग को चुनौती दी। कहा—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

स किं म एतदुपतपसि, योऽहमनेन न प्रेष्यामीति ।

"रे रोग ! क्या तू मुझे तपा रहा है। मैं तुझसे नहीं मरूँगा।" और वह नहीं मरा। ११६ वर्ष तक जीता रहा। यह मार्ग बन्द नहीं हुआ, अब भी खुला है। जो व्यक्ति ११६ वर्ष तक सुखी और सन्तुष्ट जीवन बिताना चाहता है, वह इस मार्ग पर चले। वह सत्य, शिव और सुन्दर संकल्प करे।

परन्तु आजकल संसारी लोगों की अवस्था इससे सर्वथा भिन्न है। चिन्ता, रोग, ईर्ष्या, द्वेष तथा अन्य नीच संकल्पों ने जन-समुदाय को घेर रखा है। यही कारण है कि रोग उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं। विज्ञान नित्य नये आविष्कार करता है, भीषण-से-भीषण रोगों का इलाज खोजता है, तो भी रोग कम नहीं होते; बढ़ते ही जाते हैं। यही अवस्था अन्य व्याधियों की है। जितने इलाज खोजे जाते हैं उतनी ही व्याधियाँ बढ़ जाती हैं। इसका सबसे बड़ा कारण संकल्प की अपवित्रता, भावना की अशुद्धता है और यह आधुनिक सभ्यता की देन है। अमेरिकन लेखक श्री ओरिसन स्वेट मार्डन ने लिखा है कि "आधुनिक सभ्यता ने, जिसे 'हायर सिविलाइज़ेशन' कहा जाता है, सबसे बुरी बात यह की है कि मानव के उस पवित्र विश्वास की हत्या कर दी है जिसके द्वारा रोगों को दूर रखा जा सकता था। अब बड़े-बड़े नगरों में लोग बीमारियाँ लाने की तैयारियाँ करते हैं और वे इनकी आशा रखते हैं, प्रतीक्षा करते हैं, और आखिरकार, रोग आ ही जाते हैं।"[1]

रोग रोकने का सबसे बड़ा साधन यही है कि रोग के विचार को मन में न आने दिया जाये। स्वस्थ विचार संसार की अमूल्य सम्पत्ति हैं। स्वस्थ रहने के लिए सबसे बड़ा और अचूक साधन यही है कि मन को अपवित्र संकल्पों से शुद्ध रखो। यह एक ऐसी ओषधि है, जिससे भयंकर रिसते घाव भी भर सकते हैं। दूषित भावना और मानसिक चिन्ता अनेक रोगों का कारण बनती हैं। डॉक्टर स्नो लिखते हैं—

---

1. They expect it, anticipate it and consequently have it.

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"जिन लोगों को कैंसर हुआ, उनके सम्बन्ध में अन्वेषण करने से पता लगता है कि अधिकांश रोगियों की अवस्था में, विशेषतया उन रोगियों की अवस्था में जिन्हें वक्ष-स्थल अथवा मूत्राशय में कैंसर के रोग से पीड़ित होना पड़ा, कैंसर का असली कारण मानसिक चिन्ता तथा व्याकुलता थी। डॉ० चर्टन ने 'ब्रिटिश मैडिकल जर्नल' में अपने अन्वेषण की घोषणा करते हुए स्पष्टतया लिखा है कि चिन्ता से पाण्डु रोग का उत्पन्न होना निश्चित-सा ही है। एक और योग्य डॉक्टर श्री मर्चीसन कहते हैं—'जब कभी मैं देखता हूँ कि जिगर में कैंसर होनेवाले कितने ही रोगियों के रोग का वास्तविक कारण उनका बहुत देर तक दुःख तथा चिन्ता के सागर में डूबे रहना है, तो मुझे आश्चर्य होता है। इतने अधिक रोगियों की अवस्था में मैंने यह बात देखी है कि इसे केवल इत्तिफ़ाक (संयोग) का नाम देना उचित नहीं है'···भावातिरेक का मनुष्य के चमड़े पर भी गम्भीर प्रभाव पड़ता है।"[1]

सर बी० डब्लू० रिचर्डसन अपनी पुस्तक 'फ़ील्ड ऑफ़ डिसीज़िज़' में लिखते हैं—"मानसिक उद्वेग तथा चिन्ता के बाद प्रायः चमड़े पर फुन्सियाँ निकल आती हैं। ऐसी अवस्थाओं में तथा कैंसर, मिरगी और पागलपन की हालत में मानसिक वातावरण पहले से ही मौजूद रहता है। आश्चर्य की बात है कि शारीरिक रोगों के मानसिक कारणों का

---

1. The most majority of cases of cancer, specially of heart and uterine-cancer, are due to mental anxiety, is reported by Dr. Churten in the British Medical Journal. Dr. Murchison, an eminent authority says—"I have been surprised, how often patients with primary cancer of the liver, have traced the causes of their ill-health to protracted grief or anxiety. The cases have been far too numerous to be accounted for as more coincidences. The functions of the skin are seriously affected by the emotions."

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सुचारु रूप से अध्ययन करने की चेष्टा अभी तक नहीं की गई।"[1]

यह तस्वीर का एक रुख है। इसका दूसरा रुख भी है, जहाँ शुभ और सुखद संकल्पों ने जीवन को हर्ष और उल्लास से भरने के अतिरिक्त शक्तिशाली, विशेष बलयुक्त भी बनाया। इस सम्बन्ध में डॉक्टर मार्डेन लिखते हैं—

"कितने ही अन्वेषणों में असंदिग्ध रूप से यह बात प्रमाणित हुई है कि मानव-शरीर के सकल जीवन-तन्तुओं को स्वास्थ्यवर्धक, आशामय, आह्लादकारक, प्रोत्साहक, उन्नतिशील, आशावादी और प्रसन्नतामय विचारों से इतनी सहायता मिलती है, जितनी और किसी बात से नहीं। इस प्रकार के विचार जीवन-तन्तुओं को पैदा करते हैं। इनसे उल्टे प्रकार के विचार इन तन्तुओं का नाश करते हैं। मनुष्य अपने शरीर के लिए यदि सबसे बड़ा कोई काम कर सकता है, तो यह कि इन जीवन-तन्तुओं को अधिकाधिक सबल बनाये रखे। ऐसा करने से वह स्वस्थ रहेगा और पूर्णतया स्वस्थ होने पर वह धार्मिक, सत्यवादी, ईमानदार, वफ़ादार और महान् होगा।"[2]

---

1. Sir B. W. Richordson, in his work 'The Field of Diseases' says—"Eruptions of the skin will follow excessive mental strain. In all these and in cancer, epilepsy, and mania from mental causes, there is a pre-disposition. It is remarkable how little question of the origin of physical disease from mental influences has been studied."

2. "Innumerable experiments have established the fact that all healthful, hopeful, joyous, encouraging, uplifting, optimistic, cheerful thoughts improve the cell-life of the entire body. They are creative, while the opposite thoughts are destructive of cell-life. The greatest work a human being can do is to keep his entire cell-life in the superbest possible condition. Then he will be absolutely normal, and when normal he will be right, truthful, honest, sincere, noble."

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मन का तन पर कितना प्रभाव होता है और किस तरह चिन्तित मन जीवन की समस्त शक्ति को हरकर नष्ट कर देता है, इसके सम्बन्ध से वही अमेरिकन लेखक लिखते हैं—

"चिन्ता से न केवल शरीर की शक्ति का ह्रास तथा मानव-शक्ति का नाश होता है, प्रत्युत इससे मनुष्य का किया हुआ कार्य भी निचले दर्जे का होने लगता है। यह मनुष्य की योग्यता को कम कर देती है। अपने काम को व्यक्ति सम्पूर्ण सुचारु रूप से नहीं कर पाता जब उसका मन क्षुब्ध तथा चिन्तित हो। मन अपनी सम्पूर्ण शक्ति और योग्यता से काम करे, इसके लिए आवश्यक है कि वह दुःखों, चिन्ताओं, विकारों तथा क्षोभों से मुक्त हो। चिन्तित मस्तिष्क कभी ठीक तरह नहीं सोचता, शक्ति के साथ नहीं सोचता, न्याययुक्त नहीं सोच पाता। पाचनेन्द्रियों पर तो चिन्ता तथा क्षोभ का इतना प्रभाव पड़ता है कि देखकर आश्चर्य होता है। जब पाचनेन्द्रियों में गड़बड़ होती है, तब सारे शरीर का प्रबन्ध ही अस्त-व्यस्त होने लगता है। चिन्ता से न केवल स्त्रियाँ बूढ़ी-सी दिखाई देने लगती हैं, प्रत्युत सचमुच ही बूढ़ी हो जाती हैं।"[1]

इन तथ्यों से प्रेरित होकर डॉक्टर मार्डन ने यथार्थ लिखा है कि "यदि कोई आदमी संसार में चिन्ता को नष्ट करने का मार्ग ढूंढ ले, तो वह संसार का इतना कल्याण करेगा, जितना कि आज तक कोई

1. "Worry not only saps vitality and wastes energy, but it also seriously affects the quality of one's work. It cuts down ability of efficiency into his work when his mind is troubled. The mental faculties have must perfect freedom before they will give out their best. A troubled brain cannot think clearly, vigorously and logically. The digestive organs are extremely sensitive to worry and when the digestion is interfered with, the whole physical economy is thrown into disorder...worry not only makes a woman look older, but actually makes her older."

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

भी अन्वेषक तथा आविष्कारक नहीं कर सका। मानव-मस्तिष्क उस सर्वनाश को मापने में असमर्थ है, जो संसार में चिन्ता के कारण प्रतिक्षण हो रहा है।"[1]

डॉक्टर मार्डन का विचार मिथ्या नहीं है। सांसारिक लोगों का सबसे बड़ा कल्याणकारक, उपकारक वही है जो इन विपद्ग्रस्तों को चिन्ता के कीचड़ से निकालकर आशा और आह्लाद से भी सुन्दर और सुरक्षित वाटिका में ला खड़ा करे। मानव अपनी हानि अपने ही हाथों करता है; स्वयं अपने पाँव पर कुल्हाड़ी चलाता है। पहले मन में चिन्ता को जन्म देता है, फिर स्वयं ही इस पिशाचिनी के चंगुल में फँसकर रोने लगता है। यदि वह अपने मन में बुरे संकल्प न करे, कुविचारों को पास न आने दे, तो इस चिन्ता-डाइन की क्या मजाल कि इधर झाँक भी जाय! तनिक इस अनुभूत नुस्खे का प्रयोग तो करके देखिये! फिर अनुभव कीजिये कि यह आपको कितनी ऊँचाइयों पर ले जाता है।

डॉक्टर मार्डन ने अपनी पुस्तक 'पीस, पॉवर एण्ड प्लेंटी' (शान्ति, शक्ति और बाहुल्य) में एक घटना का उल्लेख किया है, जो कि इस सिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण है। एक गाँव में एक बूढ़े पादरी रहते थे। उन्होंने अपने बत्तीस-के-बत्तीस दाँत निकलवाकर नकली दाँत लगवा रखे थे। रात को सोते समय वे दाँत उतारकर पलँग के पास तिपाई पर रख देते और प्रातः उठकर लगा लेते। यह उनका स्वभाव ही हो गया था। एक दिन प्रातःकाल उठे तो उन्हें अपने पेट में हल्की-हल्की पीड़ा का आभास हुआ। स्वभाव के अनुसार उनके हाथ तिपाई की ओर बढ़े कि दाँत लगा लें, पर हाँ दाँत नहीं थे। तिपाई के ऊपर-नीचे, इधर-उधर देखा, सि । भी उलट-पलटकर देख लिया, परन्तु दाँत नहीं मिले। अचानक उनके मन में विचार उठा, 'शायद मैं

1. "One who could rid the world of worry would render greater service to the race than all the inventors and discoverers that ever lived. No human intellect can estimate the unutterable havoc and ruin wrought by worry."

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रात मुँह से दाँत निकालने भूल गया था। हो न हो, सोते-सोते दाँत गले में से होकर पेट में पहुँच गए हैं और मेरी अंतड़ियों को काट रहे हैं। पेट की यह पीड़ा इसी कारण है।' यह विचार मन में आते ही पीड़ा बढ़ने लगी। कुछ ही क्षणों में पीड़ा असह्य हो उठी और पादरी महोदय कराहने लगे। चीखने-चिल्लाने की आवाज़ सुनकर पादरी की पत्नी दौड़ी आई। पति की यह अवस्था देखकर वह घबरा उठी और टेली-फोन करके शहर से एम्बुलेंस कार मँगवाकर पति महोदय को अस्पताल भेज दिया। डॉक्टरों ने पादरी से कहानी सुनी तो कहने लगे, "पादरी साहब, यह असम्भव है। आपका गला कोई हाथी का गला नहीं है कि दाँतों का पूरा सैट पेट में पहुँच जाय।" डॉक्टरों ने बहुतेरा समझाया, परन्तु पादरी के मन में एक बार जिस विचार ने घर कर लिया था, वह बदल नहीं सका। पादरी ने क्रोधित होकर कहा, "मैं दर्द से मरा जा रहा हूँ और तुम भाषण ही दिये जा रहे हो। ऑपरेशन करके यदि आप मुझे बचा सकते हैं तो बचा लीजिये, अन्यथा बातें न बनाइये!"

डॉक्टरों ने देखा कि पादरी का वहम दूर नहीं होता तो वे उन्हें ऑपरेशन-रूम में ले गए। चीर-फाड़ का सब सामान जुटा लिया गया और ऑपरेशन करने के लिए दरवाज़ा बन्द करके पादरी को क्लोरो-फ़ार्म देने लगे तो अचानक किसी ने दरवाज़े पर दस्तक दी। दरवाज़ा खोला गया तो चपरासी ने एक तार दिया। तार पादरी की पत्नी का था, जिसमें लिखा था, "दाँत दूसरे कमरे से मिल गए हैं। बिल्ली उठा-कर ले गई थी।" तार पढ़के डॉक्टरों के ओठों पर तो हँसी खेलनी ही थी, पादरी भी अपना दर्द भूलकर एकदम उठ बैठा; कहने लगा, "जब मैं इस मेज़ पर लेटा तो पेट की पीड़ा कम होने लगी थी। अब तो पीड़ा बिल्कुल ही नहीं है।"

मन के संकल्प-विकल्प का मनुष्य के तन पर कितना प्रभाव पड़ता है, इसका उल्लेख डॉक्टर टुके ने भी अपनी पुस्तक "इन्फ्लुएन्स आफ़ द' माइँड अपॉन द' बॉडी" में किया है। वे लिखते हैं, "कितने ही रोग केवल भय से और भय के विभिन्न रूपों से पैदा होते हैं। पागलपन, मूढ़ता, विभिन्न अंगों का निकम्मा हो जाना, अत्यधिक स्वेदन, पित्त-

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रकृति, पाण्डु रोग, बालों का शीघ्र ही श्वेत हो जाना, गंजापन, दाँतों का गिरना, रक्तहीनता, घबराहट, मूत्राशय के रोग, गर्भाशय में पड़े बच्चे का अंग-भंग हो जाना, चर्म-रोग, फुन्सियाँ, फोड़े तथा एग्ज़ीमा आदि कितने ही स्वास्थ्यनाशक रोग केवल मानसिक क्षोभ तथा भय से ही पैदा होते हैं।"[1]

एक ही रात में बालों के सफेद हो जाने की घटना मैंने अपनी आँखों से देखी है। १६३०-३१ की बात है। मेरे बड़े सुपुत्र श्री रणवीर को गवर्नर पर गोली चलाने के अभियोग में फाँसी का दण्ड हुआ था। रणवीर जी तब लाहौर सेंट्रल जेल में फाँसी की कोठरी में कैद थे और मैं उन्हें उपनिषद् सुनाने के लिए जाया करता था। वहीं एक नैतिक बन्दी भी था, जिसे एक स्त्री के कारण दो व्यक्तियों को मौत के घाट उतारने के अपराध में फाँसी का दण्ड दिया हुआ था। सैशन जज के इस निर्णय के विरुद्ध उसने हाईकोर्ट में अपील कर रखी थी। उसे विश्वास था कि हाईकोर्ट से वह छूट जाएगा, परन्तु अपील नामंज़ूर हो गई। शाम को जब मैं रणवीर को उपनिषद् सुना रहा था, तब उसे यह समाचार सुनाया गया। तब उसके बाल स्याह काले थे। अगले दिन जब मैं फिर गया तो उसके बाल सफेद हो चुके थे। तीस वर्ष का वह युवक रात में साठ वर्ष का बूढ़ा हो गया। निश्चित मृत्यु सामने खड़ी देखकर वह रात-भर सो नहीं सका। भय और चिन्ता के संकल्प ने कुछ ही घण्टों में उसकी समस्त शक्ति हर ली।

इतना प्रबल होता है संकल्प !

---

1. "Many diseases are produced by fear in its various forms. Insanity, idiocy, paralysis of various muscles and organs, profuse perspirations, cholerina, jaundice, turning of the hair grey in the short time, baldness, sudden decay of the teeth, nervous shocks followed by fatal annemia, uterine troubles, malformation of embryo through the mother, skin diseases are produced by these terrible health enemies."

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जो माताएं अपने बच्चों को शैशवकाल में या बाल्यकाल में भयभीत करती रहती हैं, या जो माता-पिता अपनी सन्तान को दबाये ही रखते हैं, वे उनके साथ शत्रुता करते हैं। बच्चों को सर्वदा उत्साहित करते रहना चाहिए कि वे सदा प्रसन्न रहने का स्वभाव डालें। दिन में एक बार तो खूब खुलकर हँसें। जो बालक खुलकर हँसते हैं, उनको छाती के रोग नहीं होते। छाती खूब फैलती है और रक्त का संचार प्रत्येक नस-नाड़ी में तीव्रता से होता है। प्रश्न-उपनिषद् में बताया गया है कि मनुष्य के शरीर में ७२ करोड़ ७२ लाख १० हज़ार दो सौ एक नाड़ियाँ हैं। यदि ये सब-की-सब नाड़ियाँ दिन में कम-से-कम एक बार न खुलें तो रक्त रुक जाता है। नाड़ियों में मैल जमने लगता है और फिर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन सारी नाड़ियों को खोलने के लिए खुलकर हँसना बहुत अच्छा साधन है; परन्तु हँसेगा कौन ? जिसके संकल्प पवित्र और ऊँचे होंगे। जो दिनभर छल, कपट और चार सौ बीस ही की बातें सोचता रहता है, वह खुलकर कभी हँस नहीं सकता।

मन एक मन्दिर है। मनुष्य को यह इसलिए नहीं सौंपा गया कि वह इसमें भय, चिन्ता, निराशा, ईर्ष्या, द्वेष और नीचता के विचारों का कूड़ा-करकट जमा करता रहे। मन का मन्दिर तो सदा पवित्र रहना चाहिए। इसको प्रसन्नता, आशा, निर्भयता, प्रेम, उत्साह और इसी प्रकार के ऊँचे उल्लास-भरे विचारों के पुष्पों से सजाना चाहिए। अपवित्र विचारों तथा पतित करनेवाले संकल्पों से सुरक्षित करने का यही साधन है कि मन को प्रेम, प्रभु-भक्ति, परोपकार तथा उत्साहपूर्ण संकल्पों से सदा परिपूर्ण रखा जाय।

अब सवाल है—मन में सत्य, शिव और दृढ़ संकल्प कैसे पैदा किया जाय ? आप कहेंगे, मन तो चाहता है कि विचार अच्छे हों, चिन्ता निकट न आय, परन्तु परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं कि मानव बेबस होकर चिन्ता के सागर में डूब जाता है। बात ग़लत नहीं है; परन्तु ऐसा कहनेवालों को यह नहीं भूलना चाहिए कि जीवन में हर तरह का मौसम आता है। गर्मी भी और शीत भी, बसन्त भी और पतझड़ भी,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

झुलसा देनेवाली धूप भी होती है, ठिठुरा देनेवाला शीत भी होता है और मूसलाधार बरसनेवाली बरसात भी होती है। अच्छे-बुरे दिन सभी पर आते हैं। भगवान् राम से बढ़कर तो कोई विभूति हमारे पास नहीं। क्या उनपर कठिन दिन नहीं आये? राजपाट छोड़कर चौदह बरस तक बन-बन में भटकना पड़ा। महलों को छोड़कर पर्ण-कुटी में रहना पड़ा। सीता जैसी साध्वी देवी पर विपत्ति आई। कितने बड़े-बड़े धर्मात्मा व्यक्तियों को भी विपत्ति के दिन देखने पड़े, तो आजकल के नर-नारियों की क्या गणना?

कष्ट-क्लेश के दिन तो आते ही हैं। धीर पुरुष वह है और वीरांगना नारी वह है जो विपतियों और कष्ट के दिनों को धैर्य के साथ काट दे। अधीर न हो। घबराये नहीं। ऐसे धीर नर-नारी के लिए कष्ट, कष्ट नहीं रहता। अपने संकल्पों से वह सहन-शक्ति पैदा कर चुका होता है। हमारे शास्त्रों ने तो हमें जीवन इसी प्रकार व्यतीत करने का आदेश दिया है कि कष्ट, कष्ट ही प्रतीत न हों। उपनिषद् में तो यहाँ तक लिखा है कि रोगी होकर भी अपने-आपको रोगी न समझो। यही समझो कि आप तप, तप रहे हैं। बृहदारण्यक-उपनिषद् में लिखा है—

एतद्वै परमं तपो यद् व्याहितस्तप्यते ॥ ५ । ११ । १ ॥

"यह परम तप है, जो रोगी हुआ तपता है।" इसी को कहते हैं हर हाल में खुशहाल रहना। इसी को स्वामी रामतीर्थ जी ने 'हाल-मस्त' कहा था। मैं लिख चुका हूँ कि भक्त अपने-आपको यज्ञ-रूप समझे। यज्ञ में 'उपसदा' और 'दीक्षा' का वर्णन आता है। यदि भक्त खाता-पीता और खुशियाँ मनाता है तो समझना चाहिए कि वह यज्ञ की 'उपसदा' को पूर्ण कर रहा है। यदि भक्त भूखा-प्यासा रहता है, कष्ट सहता है, खुशियों से दूर चला गया है, तो समझना चाहिए कि वह यज्ञ की 'दीक्षा' पूर्ण कर रहा है। प्रयोजन यह है कि भक्त किसी भी अवस्था में मन को निर्बल न होने दे। यही द्वन्द्व-सहन है। गर्मी-सर्दी, दुःख-सुख, नर्मी-सख्ती, हर अवस्था में एकरस रहना ही दृढ़-संकल्प बनने की पहली सीढ़ी है। मनुष्य विपत्तियों में घिरा हुआ भी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

निराश न हो। जीवन-यात्रा में कितनी ही बार पाँव फिसल भी जाते हैं, चोटें भी लगती हैं; परन्तु साहसी यात्री का यह कर्त्तव्य है कि फिसलकर फिर सँभले। चोट खाकर, गिरकर फिर उठे और अपने लक्ष्य की ओर चल पड़े। दृढ़ संकल्प कर ले कि चाहे कुछ भी हो, मैं तो अपने लक्ष्य, प्रभु-दर्शन की ओर अग्रसर होता ही रहूँगा। संकल्प और दृढ़-संकल्प तथा शिव-सुन्दर संकल्पवाला बनकर ही मनुष्य अपनी जीवन-यात्रा का उद्देश्य पूर्ण कर सकता है। जब लौकिक व्यवहार में संकल्पों का इतना प्रभाव होता है, तो अनुमान कीजिए कि दृढ़-संकल्प कितने अद्भुत व अलौकिक फल पैदा कर सकते हैं।

प्रभु-दर्शन के लिए जब अपने मन में उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाय, तो फिर संसार में रहते हुए भी ये सारे संसारी आडम्बर और आकर्षण फीके दीखने लगते हैं और एक प्यारा प्रभु ही प्यारा प्रतीत होने लगता है। तब भक्त उपनिषद् के शब्दों में पुकार उठता है—

तदेतत् प्रेयः पुत्रात्, प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात्।
सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा ॥ बृह० उ० १।४।६।८॥

"यह पुत्र से अधिक प्यारा है, यह धन से अधिक प्यारा है और हरेक वस्तु से अधिक प्यारा है, यह सबसे अधिक निकट है जो यह आत्मा है।"

यह तो अभी आत्मा के प्यार की बात कही और परमात्मा तो इससे कहीं महान् और अधिक प्यारा है। वेद भगवान् की वाणी में अटल विश्वासी भक्त कह उठता है—

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥
उत नः सुभगां अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ऋ० १।४।५-६॥

"चाहे हमारे निन्दक हमें कहें कि तुम जो केवल इन्द्र परमात्मा की ही पूजा करते हो, तुम इस स्थान से और दूसरे स्थान से भी चले जाओ ॥ ५॥ और चाहे भक्तजन हमें सौभाग्यवाला बतलायें, पर हे अद्भुत इन्द्र प्रभो! हम तेरी ही शरण में पड़े रहेंगे ॥ ६॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दृढ़ संकल्पवाला बनने के लिए पूर्ण आस्तिकता की भावना मन में जाग्रत् करनी चाहिए। श्रद्धा और विश्वास की जोत हृदय में प्रज्वलित करनी चाहिए। कितनी ही घटनाएँ ऐसी भी आयेंगी जो श्रद्धा, विश्वास और आस्तिकता को कुचल डालें, परन्तु सावधान रहें और ऐसी घटनाओं के पश्चात् भी दृढ़ संकल्प को न छोड़ें। दृढ़ संकल्पवालों ने अन्त में सफलता प्राप्त की है। प्रह्लाद पर क्या कम आपत्तियाँ आई थीं? परन्तु उसने अपना सत्य संकल्प न छोड़ा और प्रभु-दर्शन पा लिये। ध्रुव के दृढ़ संकल्प ने ही उसे घोर तप करने पर प्रेरित किया; उसने संकल्प किया—"चाहे जो हो जाये, अपने प्यारे प्रभु सच्चे पिता की गोद में बैठूंगा।" और वह प्रभु की गोद में जा बैठा। यह दृढ़ संकल्प ही था, जिसने महर्षि दयानन्द को माता-पिता के लाड-प्यार तथा घर के सुख-आनन्द को त्यागने पर तैयार कर दिया। बाल्यकाल से ही दयानन्द सच्चे शिव के दर्शन पाने के लिए व्याकुल हो उठे। नर्मदा नदी के तट पर निवास करनेवाले योगियों और उत्तराखंड, गंगोत्री,[1] जमुनोत्री, बदरी और केदारनाथ की गुफाओं में रहनेवाले तपस्वियों के पास दयानन्द पहुँचे और जब तक अनन्त शिव के दर्शन नहीं पा लिये, उन्हें चैन नहीं आया। वह दृढ़ संकल्प ही है, जो साधक और भक्त को भयंकर परिस्थितियों में भी अटल खड़ा रखता है। प्रेम, श्रद्धा और भक्ति की मूर्ति मीराबाई को उसके दृढ़ संकल्प ने ही लोक-

---

१. गंगोत्री उत्तर काशी से ५६ मील है। गंगोत्री जब १३ मील की दूरी पर रह जाती है तो इस मार्ग की अन्तिम बस्ती धराली आती है। धराली से एक मील ऊपर गंगा-तट से कुछ ऊँचाई पर दक्षिण हाथ कुछ कन्दराएँ हैं। उनमें एक कन्दरा धराली के ठाकुर नारायणसिंह जी ने दिखलाई और बतलाया कि उनके पिता ठाकुर शिवसिंह कई बार यहाँ आकर बतलाया करते थे कि श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती यहाँ चिरकाल तक तपस्या करते रहे थे, अपने तपस्या-काल में स्वामी जी लम्बी समाधियाँ भी यहाँ पर लगाया करते थे। जब वे समाधि-अवस्था में नहीं होते थे, तो मेरे पिता प्रतिदिन स्वामी जी के लिए खाद्य पदार्थ लाया करते थे। (सं० १९४१)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लाज से ऊपर कर दिया; विषैले सर्प तथा हलाहल से अभय बना दिया।

रियासत बहावलपुर के रामभक्त छिनकू की घटना आपने सुनी होगी। बहुत ही मीठे स्वभाववाला भक्त छिनकू बहावलपुर नगर में एक छोटी-सी दुकान करता था। नवाब तक को यह विश्वास था कि सर्वथा शुद्ध और बिना मिलावट के यदि कहीं से घी मिल सकता है तो वह भक्त छिनकू की दुकान से। भक्त छिनकू दिनभर भगवान् राम की आराधना में लगा रहता। शाम को दो-तीन घण्टों के लिए दूकान खोलकर रोटी कमा लेता। कितने ही मुसलमान भी उसके मित्र थे। एक दिन एक मुसलमान ने उसे प्रातः ही आकर कहा, "दूकान खोलो।" भक्त ने कहा, "यह समय दूकान खोलने का नहीं, राम-भजन का है।" मुसलमान ने भगवान् राम को गाली निकाल दी। भक्त छिनकू ने कहा, "यदि ऐसे ही तुम्हारे खुदा को और पीर को कोई कह दे तो ?" इसपर क्रोध भड़का; उसने और भी गालियाँ निकालीं। तब भक्त छिनकू ने भी वैसा ही उत्तर दिया। बात बढ़ गई। मुसलमान ने हाकिम के पास रिपोर्ट कर दी। भक्त छिनकू को पुलिस पकड़कर ले गई। नवाब तक समाचार जा पहुँचा। नवाब ने छिनकू को कहला भेजा कि तू इन्कारी हो जा और कह दे कि मैंने पीर को गालियाँ नहीं दीं, तुम्हें छोड़ दिया जायेगा। परन्तु जब कचहरी में उसका बयान लिया गया तो भक्त छिनकू ने स्पष्ट कह दिया कि 'मैंने गाली दी है।' फैसला सुना दिया गया कि इसे 'संगसार' (पत्थर मार-मारकर मार देना) कर दिया जाये। भक्त छिनकू मैदान में खड़ा है। जो भी उधर से गुज़रता है, वह भक्त पर पत्थर ज़ोर से फेंकता है। पत्थर की चोट लगते ही भक्त छिनकू फिर पुकारता है—'राम!' पत्थरों से सिर, छाती, सारा शरीर घायल कर दिया गया। जगह-जगह से लहू बह रहा है और हर पत्थर लगने पर छिनकू कह रहा है—'राम!' शाम के समय उसका एक परम मित्र मुसलमान सज्जन आया और कहने लगा, "छिनकू! मुझसे तुम्हारी यह दशा देखी नहीं जाती। मुझे आज्ञा दो कि मैं तुम्हें तलवार से एक वार में समाप्त कर दूँ।" भक्त

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ने उत्तर दिया, "नहीं प्यारे मित्र ! राज्याज्ञा के अनुसार ही मुझे मरना चाहिए। मुझे तो कोई पीड़ा हो ही नहीं रही। पीड़ा केवल शरीर को है, जिसने आज भी और कल भी नाश होना है। तुम कोई चिन्ता न करो।" परन्तु उस मुसलमान मित्र के लिए यह अत्याचार अधिक देर सहन करना कठिन हो गया। तब वह तलवार ले आया और उसने भक्त छिनकू का सिर काट दिया। सिर कटकर भूमि पर गिरा तो कितनी ही देर तक छटपटाता रहा और ऐसा प्रतीत होता था कि वह मानो उसी राम-राम कहने के पुराने आवेश में ऐसा कर रहा हो। दृढ़ संकल्प और अगाध शक्ति ही ऐसे दृश्य दिखला सकती है।

हैदराबाद (दक्षिण) के एक वीर युवक को जब हैदराबाद जेल में 'वैदिक धर्म की जय' का नारा लगाने से पुलिस ने रोका और वह वीर युवक 'वैदिक धर्म की जय' बार-बार कहता ही रहा, तो उसे टिकटिकी के साथ बाँध दिया गया। कोड़े पड़ने लगे। जब पहला कोड़ा पड़ा, तो वीर ने ऊँचे स्वर से कहा—'वैदिक धर्म की जय!' दूसरा कोड़ा और भी अधिक तेज़ था। वीर की ध्वनि अधिक ऊँची हो गई। हर कोड़े के पश्चात् 'वैदिक धर्म की जय' की गूँज सारी जेल से सुनाई देती थी। कोड़ों से जब वीर बेहोश हो गया तो उस अवस्था में भी उसकी जिह्वा 'वैदिक धर्म की जय' का ही जाप कर रही थी। दृढ़ संकल्प और श्रद्धा के सामने संसारी पीड़ाएँ कोई शक्ति नहीं रखतीं। जो एक कार्य करने या किसी उद्देश्य को पूर्ण करने का दृढ़ निश्चय कर चुका है और उसपर कटिबद्ध हो गया है, उसको न अग्नि, न समुद्र, न भूकम्प, न नाना कष्ट, कोई भी रोक नहीं सकता। वह तो सबको पार करता हुआ आगे निकल जाता है—

मार सहे अन्धेर की, अटकें कष्ट अनेक।
धर्मवीर की अन्त में, पर न टरेगी टेक॥

इसी प्रकार जब प्रभु-प्रेम का पात्र बनने के लिए दृढ़ संकल्प कर इसी मार्ग पर हम चल पड़ेंगे, तब समझ लीजिये कि प्रभु-दर्शन की पक्की नींव पर आप अचल खड़े हो गए हैं। आप निःसन्देह साक्षात्

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दर्शन पा लेंगे और कोई बाधा आपके मार्ग में खड़ी नहीं होगी। यदि बाधाएँ आयेंगी तो आप उनपर विजय प्राप्त कर लेंगे। निश्चय रखें, आपमें बहुत बड़ी शक्ति छिपी हुई है। आप स्वयं ही अपने-आपको पूर्ण अधिकारी बनाने के योग्य हैं। अपने संकल्प को निर्बल न होने दें। अपने-आपको तुच्छ न समझें। भगवान् कृष्ण के इस आदेश को सर्वदा सामने रखें कि—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ गीता ६।५॥

"अपने द्वारा ही अपना उद्धार करो, अपने को गिराओ नहीं। आप स्वयं ही अपने मित्र हैं और आप ही अपने वैरी हैं।"

□

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ओ३म् उत्तिष्ठ प्रहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे।
तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्वधाभिः ॥

अथर्ववेद १८ । ३ । ८ ॥

३. तैयारी

प्रभु-दर्शन की नींव सत्य, शिव और दृढ़ संकल्प से रख दी गई; परन्तु केवल नींव ही से तो कार्य सिद्ध नहीं होता। अभी क्रियात्मक रूप से इस प्रकार का जीवन बनाना होगा, जो कि वास्तव में प्रभु-दर्शन करा सके। कई सज्जन कहते हैं कि 'बड़ी प्रबल इच्छा, अटल निश्चय और दृढ़ संकल्प से बैठते हैं कि मन को एकाग्र करके भगवान् के दर्शन पायेंगे; परन्तु कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता। निराश होकर उठ खड़े होते हैं।' ऐसे भक्तों से मेरा निवेदन है कि मन की एकाग्रता केवल एक स्थान में बैठकर आँखें बन्द करके ध्यान लगाने का प्रयत्न करने ही से प्राप्त नहीं हो सकती। इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए पहले कितनी ही मंज़िलें तय करनी पड़ती हैं। दृढ़ संकल्प की नींव रखने के पश्चात् मनुष्य को अपना 'मनुष्य-जीवन' बनाना होता है। 'मनुष्य को मनुष्य-जीवन' बनाना होता है, इसका क्या अर्थ? अर्थ यह है कि मनुष्य में मनुष्यत्व पैदा हो जाये। वह जड़वत् और पशुवत् न बना रहे।

प्रभु की इस अद्भुत सृष्टि में लाखों योनियाँ हैं—पशु, पक्षी, जल-चर, भूचर, नभचर, कीट-पतंग इत्यादि। इस सारी सृष्टि में प्रभु-दर्शन का अधिकार केवल मनुष्य को ही दिया गया है। अब यदि मनुष्य मानव का चोला धारण करके भी पशु या अमानव बना रहे तो केवल इस चोले के कारण उसे प्रभु-दर्शन नहीं हो सकेंगे। इसलिए मनुष्य को मनुष्य बनना होगा और मनुष्य भी आर्य मनुष्य, दस्यु नहीं।

महाभारत के उद्योगपर्व, अध्याय ३४ में आर्य की परिभाषा की गई है—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥११२॥
न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।
दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥११३॥

"जो शान्त हुए वैर को नहीं चमकाता, घमण्ड में कभी नहीं आता, तेज से हीन नहीं होता और विपदाएँ झेलता हुआ भी अकार्य नहीं करता है उसको, केवल उसी को, आर्यपुरुष आर्यशील कहते हैं ॥११२॥ जो अपने सुख (ऐश्वर्य) में फूल नहीं जाता, दूसरे के दुःख में जो प्रसन्न नहीं होता, दान करके पीछे पछताता नहीं, वह सत्यपुरुष आर्यशील कहलाता है ॥११३॥"

यही गुण मनुष्य में हों, तो वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है। वेद भगवान् में मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए जिन नियमों का आदेश किया गया है, उनमें से अत्यन्त आवश्यक ये हैं—

१. उषःकाल से पहले उठो !

सबसे पहला आदेश यह है कि मनुष्य सूर्य तथा उषा से भी पहले निद्रा त्यागकर उठ खड़े हों। उषा उस ज्योति का नाम है, जो सूर्य उदय होने से पूर्व फैलती है।

अथर्ववेद (१०।७।३१) में यह आदेश है—

नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संबभूव ॥

"सूर्य से पहले और उषा से पहले नाम को नाम से (उस ईश्वर को) बार-बार पुकारो, जो अजन्मा है और पहले ही प्रकट है।" मनुष्य को चाहिए कि वह उषा से पहले उठे, भगवान् के नाना नामों से उसे स्मरण करे। उषा देवी की बड़ी महिमा वेद ने गाई है। ऋग्वेद में लिखा है कि "रानी उषा मनुष्य-समुदाय के लिए चिकित्सा करती हुई काले आकाश से उठ खड़ी हुई है।" ऋ० १।१२३।१॥

फिर इसी मण्डल के इसी सूक्त का चौथा मन्त्र यह है—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

गृहं गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद् भजते वसूनाम् ॥
ऋ० १।१२३।४॥

"उषा दिन-पर-दिन सवाया रूप धरती हुई घर की ओर जाती है। यह कुछ देना चाहती हुई, चमकती हुई सदा आती है और कोषों में से आगे-आगे बाँटती ही जाती है।"

इस उषा देवी का स्वागत करने के लिए उषा के आने से पूर्व ही उठ जाओ। यदि उषा देवी आ गई और आप निद्रा में पड़े रहे, तो आप उषा की देन से वंचित रह जायेंगे। जागो! जागो और भगवान् के खज़ाने से कुछ ले लो! एक कवि ने भी कहा है—

हर रात के पिछले पहर में,
इक दौलत लुटती रहती है॥
जो जागता है सो पाता है,
जो सोता है सो खोता है॥

भक्त कबीर कितनी मस्ती से गाता है—

जागु री बौरी, अब का सोवे।
रैन गई दिन काहे को खोवे॥
जिन जागा तिन मानिक पाया,
तैं बौरी सब सोय गँवाया।
पिय तेरे चतुर तू मूर्ख नारी,
कबहुँ न पिय की सेज सँवारी॥
तू बौरी बौरापन कीन्हों,
भरजोबन प्रिय अपन न चीन्हों॥
जागु पिया अब सेज न तेरे,
तोहि छोड़ि उठि गये सबेरे॥
कह कबीर, सोई धन जागै,
शब्द बान उर अन्तर लागे॥

देखो, बाहर देखो!

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उषा देवी चहक रही है। स्वास्थ्य, सौन्दर्य, सफलता, आस्तिकता, सुख, सम्पन्नता, ऐश्वर्य की दौलत लुटा रही है और तुम अभागे सो रहे हो ? यह अमृतबेला है। तीन घड़ी रात रहते शय्या को छोड़ दो। निहारो तो, तुम्हारा प्रीतम कितना सुन्दर रूप धारण करके इस बहाने तुम्हें देखने आया है। उठो ! गाओ, अपने प्रीतम के गीत गाओ। वन्दना करो। अर्चना करो और हाथ फैलाकर कहो—"लाओ प्रीतम ! मुझे मनुष्य बनाने के लिए क्या लाये हो ?"

२. शरीर को बलवान् बनाओ !

रोगी शरीर का स्वामी मनुष्यत्व से पतित हो जाता है, क्योंकि उसमें मनुष्य-धर्म को पूर्ण करने की सामर्थ्य नहीं होती। अपने शरीर तथा इन्द्रियों को इस प्रकार से रखो कि वे सदा स्वस्थ और बलवान् रहें। खान-पान ऐसा सात्त्विक हो, जिससे शरीर की शक्ति बढ़ती रहे और मनुष्य इस वैदिक आदर्श को दूसरों के सामने निस्संकोच भाव से रख सके—

> वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षरक्षणोः श्रोत्रं कर्णयोः ॥
> अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥
> ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।
> प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मा निभृष्टः ॥
> अथर्व० १९ । ६० । १-२ ॥

"मेरे मुख में वाणी है (मुझमें अपने मन के भाव प्रकट करने की शक्ति है, सत्य कहने का भय नहीं है)।"

"मेरी नसों में प्राण है (मैं जीता-जागता हूँ और जीवन के लक्ष्य दिखा सकता हूँ)।"

"मेरे नेत्रों में दृष्टि है और कानों में श्रुति है (मैं यथार्थ ही देखता और यथार्थ ही सुनता हूँ)।"

"मेरे बाल श्वेत नहीं, मेरे दाँत लाल नहीं और मेरी भुजाओं में बड़ा बल है।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"मेरी रानों में शक्ति है और मेरी जंघों में वेग है। मेरे दोनों पाँवों में दृढ़ खड़ा होने की शक्ति है (मैं इस जीवन-संग्राम में अपने पाँवों पर खड़ा होने के योग्य हूँ)।"

"मेरे सारे अंग पूर्ण और नीरोग हैं। मेरी आत्मा परिपक्व है (बलवान् और तेजस्वी है)।"

इस पवित्र वेदमन्त्र के अनुसार हमारा एक-एक अंग बलवान् हो। जो उष:काल से पूर्व उठकर शौच जाता है, व्यायाम, भ्रमण या योग के आसन करता है, जिह्वा के स्वाद के अधीन न होकर सात्त्विक और पोषक अन्न, दूध, फल खाता है, और इन्द्रियों को वश में रखता है, निस्सन्देह वह अपना शरीर इस वेदमन्त्र के अनुकूल बना लेता है। यदि दूध और फल नहीं मिलते तो केवल अन्न से भी वैसी ही शक्ति वह प्राप्त कर लेता है।

होना यह चाहिए कि शरीर स्वस्थ रहे, क्योंकि स्वास्थ्य के बिना कोई भी कार्यसिद्धि नहीं हो सकती। आयुर्वेद के शास्त्र 'चरक संहिता' में यह आदेश है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

"धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन सबका मूल आरोग्य है।"

३. चरित्र को पवित्र बनाओ!

शरीर को बलवान् एवं स्वस्थ बनाने के साथ यह भी आवश्यक है कि मनुष्य का चरित्र पवित्र हो। चरित्रहीन बलवान् तो पशुओं से भी बुरा है। वह तो समाज और परिवार का शत्रु है और मनुष्य कहलाने के भी योग्य नहीं।

यजुर्वेद ४।२८ में भगवान् से यह प्रार्थना की गई है—

परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँऽअनु॥

"हे अग्ने! मुझे दुश्चरित से सदा बचाते रहो और सुचरित में सदा चलाते रहो, जिससे कि मैं उच्च जीवन और पवित्र जीवन के साथ देवताओं की ओर बढ़ूँ।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

आप यह निश्चय करें कि आप किसके साथी बनना चाहते हैं ? देवताओं के या असुरों के ? इस निश्चय के पश्चात् यदि देवताओं का साथी बनना पसन्द किया है, तो चरित्र पवित्र बनाना होगा। चरित्र का नाश करनेवाली जो बातें हैं, वेद ने उनका निषेध किया है—

(क) सुरापान तथा बुद्धि-विनाशक अन्य मादक द्रव्यों का सेवन न करें। ऋ० ७। ८६। ६२॥

(ख) मांस, अण्डा आदि अभक्ष्य पदार्थ न खायें। अथर्व० ८। ६। २३॥

(ग) द्यूत (जुआ) न खेलें। ऋ० १०। ३४। २॥

(घ) व्यभिचार न करें। ऋ० ४। ५। ५॥

(ङ) दूसरे का अधिकार, अन्न-धन न छीनें।

सबसे सद्व्यवहार करें और सबसे बढ़कर यह कि किसी से द्रोह न करें। पवित्र चरित्रवाला ही शीलवान् कहलाता है। शील के सम्बन्ध में कहा गया है—

अद्रोहः सर्वभूतेषु, कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च ज्ञानं च, शीलमेतद् विदुर्बुधाः॥

"मन, वाणी और कर्म के द्वारा प्राणधारियों के विषय में द्रोह-रहित रहना और सबके भले में रहना तथा ज्ञान को बढ़ाते रहना, बुद्धिमान् लोग इसको शील (चरित्र, आचार) कहते हैं।" आचार-हीन के लिए तो कहीं कोई ठिकाना ही नहीं है। क्योंकि—

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।

"जो आचार से हीन है, उसे वेद भी पवित्र नहीं करते।"

आचारः प्रथमो धर्मः।

"आचार पहला धर्म है।"

इसलिए पूरी सावधानी से अपने चरित्र की रक्षा करो। यह संसार फिसलनी घाटी है। यदि जीवन-यात्रा में कभी पाँव फिसल जाये और न चाहते हुए भी चरित्र में कमज़ोरी आने लगे, तो प्रभु के चरणों में झुककर उससे निवेदन करो—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ओ३म् यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं
बृहस्पतिर्मे तद् दधातु । शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।।
यजु० ३६ । २ ।।

"जो मेरी आँखों में छिद्र (दोष) है, अथवा मेरे हृदय का तथा मन का जो गहरा गढ़ा है, हे बृहस्पति भगवान्! वह भर दो। हमारे लिए कल्याणकारी बनो! आप सबके स्वामी हैं।"

'महाभारत' में यह आदेश है—

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्, वित्तमेति च याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हतः ।।

"वृत्त (चरित्र) की यत्न से रक्षा करे। वित्त (धन) तो आता है और जाता है। वित्त (धन) से क्षीण हुआ क्षीण नहीं, परन्तु वृत्त (चरित्र) से गिरा हुआ तो मरा ही हुआ है।"

आधुनिक काल में तो सब-कुछ वित्त (धन) ही का समझ लिया गया है। बाल्यकाल में पाठशाला में हम पढ़ा करते थे—

धन का नाश हो जाये तो कुछ नहीं बिगड़ा।
स्वास्थ्य बिगड़ जाये तो थोड़ी हानि हुई।
चरित्र बिगड़ जाये तो सर्वनाश हो गया।।[1]

लेकिन अब इससे बिल्कुल उलटी बात हो गई है। नीचे की चीजें ऊपर चली गई हैं। ऊपर की चीज़ें नीचे आ गई हैं। वचन से भले ही लोग कहते हों, परन्तु कर्म से अब यह कहा जाने लगा है—

चरित्र बिगड़ जाये तो कुछ नहीं बिगड़ा।
स्वास्थ्य बिगड़ जाये तो थोड़ी हानि हुई।।
धन का नाश हो जाये तो सर्वनाश हो गया।।[2]

---

1. When wealth is lost, nothing is lost,
When health is lost, something is lost,
When character is lost everything is lost.

2. When character is lost, nothing is lost,
When health is lost, something is lost,
When wealth is lost, everything is lost.

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अर्थात् वृत्त (चरित्र) का स्थान वित्त (धन) ने ले लिया है। चक्की उलटी चलने लगी है।

आधुनिक सभ्यता के प्रेमी बड़े गर्व से कहते हैं कि हम जनता का 'स्टैंडर्ड ऑफ़ लाइफ़' (जीवन-स्तर) ऊँचा करना चाहते हैं। परन्तु इनका 'जीवन-स्तर' केवल भौतिक शरीर तक ही सीमित है। इससे आगे नहीं जाता। सुन्दर वस्त्र पहनना, योग के आसनों तथा व्यायाम के स्थान पर बेडमिंटन इत्यादि खेलना, भोजनशाला में बैठकर भोजन करने के बजाय डाइनिंग-हॉल में मेज़ लगाकर भोजन करना, सत्संग में जाकर प्रभु-कीर्तन करने के बजाय क्लब-घर में जाकर ताश-जुआ खेलना आदि ही 'जीवन-स्तर' ऊँचा करने के साधन समझ लिये गये हैं। ऐसे साधनों से 'जीवन-स्तर' ऊँचा हो रहा है या नीचा? हाँ, थालियाँ तथा प्लेटें निस्सन्देह ऊँची हो गई हैं। वे चौके से उठकर मेज़ पर आ गई हैं। परन्तु जीवन-स्तर का पतन हो गया। जीवन-स्तर ऊँचा होने का अर्थ तो यह है कि रहें सादगी से और जीवन में नम्रता हो; सत्य, सेवा, स्वाध्याय तथा सद्व्यवहार की ज्योति चमकने लगे। परन्तु अब तो जीवन-स्तर की ऊँचाई केवल धन से मापी जाने लगी है। यह धन एकत्र करने के लिए हर प्रकार का छल-कपट, अन्याय और दुर्व्यवहार होने लगा है। यह जो उल्टी हवा बहने लगी है, जिसने चरित्र का सर्वनाश कर दिया है, इसे पूर्ण प्रयत्न से बदल देना होगा। जहाँ अपने-आपको पवित्र चरित्रवाला बनाना होगा, वहाँ मनुष्य-समाज पर भी यही रंग चढ़ाना होगा। वेद भगवान् का यह आदेश सारे संसार को लेना चाहिए—

ओ३म् प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरन्,
श्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य,
पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः॥ ऋ० ९।७३।६॥

'परम देव परमात्मा की ओर से विचित्र शक्तियाँ उठती रहती हैं। भक्तिभाव और प्रेरणावाले उन्हें पहचानते हैं। अन्धों और बहरों की वहाँ पहुँच नहीं। दुष्कर्मी सत्य मार्ग को पार नहीं कर सकते।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ओ३म् ऋतस्य गोपा न दभाय
सुक्रतु स्त्री ष पवित्रा हृद्यऽन्तरा दधे।
विद्वान् त्स विश्वा भुवनाभि पश्यत्यवाजुष्टान्
तत् विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ऋ० ६।७३।८॥

"सत्य के पालक प्रभु का बल अद्भुत है। उसे कौन ठग सकता है? वह अत्यन्त शुद्ध बारीक शोधवाला है। उससे कुछ छिपा हुआ नहीं। आचरण-शून्य लोगों से उसका प्रेम नहीं होता, इसलिए उनका विकास रुका रहता है।"

ओ३म् ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र
आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया।
धीराश्चित् तत् समिनक्षन्त आशताऽत्रा
कर्तमव पदात्यप्रभुः॥ ऋ० ६।७३।६॥

"जहाँ शुद्ध व्यवहार नहीं है, वहाँ सत्य का सूत्र विद्यमान है। पाप-नाशक भगवान् की विचित्र शक्ति से (यह सूत्र हृदय में पैदा होकर) जिह्वा के सिरे तक पहुँचता है। सुकर्मी लोग इसे भली प्रकार पा सकते हैं। कर्महीन का मार्ग नीचे की ओर रहता है।"

४. मनुष्य-समाज के योग्य बनो!

मनुष्य-समाज की व्यवस्था ठीक रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने आश्रम और वर्ण का सुन्दर ढाँचा निर्माण किया था। जब तक वर्ण-आश्रम की मर्यादानुसार समाज चलता रहा, संसारी लोग अपना जीवन-उद्देश्य पूरा करते रहे। परन्तु अविद्या, आलस्य, प्रमाद और स्वार्थ के कारण अब मर्यादा भंग हो गई है और मनुष्य-समाज दुःखी हो गया है। आश्रम-मर्यादा यह थी कि बाल्यकाल से लेकर पूर्ण युवा-अवस्था तक बालक-बालिकाएँ ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए हर प्रकार की विद्या और ज्ञान प्राप्त करते थे। शरीर, बुद्धि तथा मन का विकास हो जाने के बाद मनुष्य अपने समाज के लिए गौरवजनक बन जाता था। संसार और सृष्टि के क्रम को जारी रखने के लिए ब्रह्मचर्य-आश्रम के पश्चात् गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करना होता था।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

गृहस्थ से वानप्रस्थ और फिर संन्यास में आना होता था। कुछ त्यागी, तपस्वी एवं परोपकारी ऐसे भी होते थे, जो गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश ही नहीं करते थे। बहुत प्राचीन काल की बात तो जाने दीजिये, पिछले थोड़े समय में ही इस प्रकार के तपस्वियों में भगवान् शंकराचार्य और भगवान् दयानन्द दो ऐसे महानुभाव हुए हैं, जिन्होंने प्रभु-दर्शन और परोपकार के लिए युवा-अवस्था में ही संन्यास लेकर अपना जीवन सफल बना लिया।

अब भी ऐसे महानुभाव हैं, जो सारा जीवन ब्रह्मचारी रहकर आत्मदर्शन कर रहे हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाले अपना जीवन सफल नहीं बना सकते। गृहस्थाश्रम को तो सारे आश्रमों में से श्रेष्ठ माना गया है। वेद ने तो गृहस्थाश्रम को 'पुण्य लोक और धर्म की वेदी' कहा है। (ऋ० १० । ८५ । २ ।।)

भगवान् मनु ने गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में यहाँ तक लिख दिया है कि—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।

मनु० ३ । ७७ ।।

"जैसे सारे प्राणधारी वायु का आश्रय लेकर जीवित रहते हैं, वैसे ही सब आश्रमी गृहस्थ में आश्रय लेकर रहते हैं।"

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

मनु० ६ । ९० ।।

"जैसे सब नदी और नद समुद्र में विश्राम पाते हैं, वैसे ही सब आश्रम गृहस्थ में विश्राम पाते हैं।"

गृहस्थाश्रम ब्रह्म-प्राप्ति में बाधक नहीं है, अपितु हमारा इतिहास बतलाता है कि बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि जो आत्म-विद्या और ब्रह्म-विद्या के आचार्य थे, वे गृहस्थी ही थे। याज्ञवल्क्य ने यद्यपि संन्यास बाद में धारण किया, परन्तु वे ब्रह्म-विद्या के आचार्य गृहस्थ ही में बन चुके थे। गृहस्थी के रूप में ही वे जनक को आत्मा के दर्शन कराते रहे;

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

संन्यास लेने से पूर्व अपनी पत्नी मैत्रेयी को आत्म-विद्या सिखलाकर गये। उन्हें गृहस्थाश्रम ही में ब्रह्म के साक्षात् दर्शन प्राप्त हो चुके थे। केवल आश्रम-मर्यादा पालन करने के लिए ही उन्होंने संन्यास धारण किया। देवी मदालसा ने भी पितृ-गृह में ही ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया था और विवाह करने के पश्चात् अपने पाँच सुपुत्रों को ब्रह्म-ज्ञान देकर योगी बना दिया। मदालसा जैसी देवियों ने गृहस्थ-आश्रम में ही सब-कुछ पा लिया था। ऐसे ही विदेह जनक, राजा अश्वपति, कैकेय, जिनका वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में आता है, पूर्ण ब्रह्मवेत्ता थे। छान्दोग्योपनिषद् के अन्त में तो गृहस्थाश्रम का विधान करके उसी का फल ब्रह्मलोक बतलाया है। महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' के चतुर्थ समुल्लास के अन्त में लिखा है—

"जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उसका आधार गृहस्थाश्रम है; जो कोई गृहस्थाश्रम की निन्दा करता है, वही निन्दनीय और जो प्रशंसा करता है, वही प्रशंसनीय है। परन्तु गृहस्थाश्रम में तभी सुख होता है, जब स्त्री-पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहार के ज्ञाता हों।"

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी कौन है ? इस सम्बन्ध में वेद में बहुत सुन्दर और भावपूर्ण मन्त्र आते हैं। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाला व्यक्ति कहता है—

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रत एमसि।
ऊर्जं बिभ्रद् वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥
यजु० ३। ४१॥

"हे गृहस्थो, मत डरो, मत काँपो ! मैं जब पराक्रम को धारण करनेवालों के निकट आया हूँ, तो स्वयं पराक्रम को धारण करके उदार हृदय और गम्भीर मेधा से युक्त होकर (आनन्द) हर्ष-भरे मन के साथ तुम गृहस्थों के निकट आता हूँ।"

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत्॥
अथर्व० ७। ६०। १॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"पराक्रम की धारणा कर ऐश्वर्य और भलाई का प्रेमी बन, उत्तम मेधा और उदार मन से युक्त हुआ, आदर-मान करता हुआ मैं कभी प्रतिकूल न होनेवाली मित्र जैसी दृष्टि से गृहस्थों में प्रविष्ट होता हूँ। हे गृहस्थो ! मेरे साथ आनन्द मनाओ, मुझसे डरो मत।"

गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार वेद ने केवल उन्हीं युवक-युवतियों को दिया है, जिनके अन्दर पराक्रम और ऐश्वर्य है, हृदय उदार है, दूसरों की भलाई करने का उत्साह और प्रेम है, जिनका मन उत्साह और आनन्द से भरपूर है, शरीर पुष्ट है और जो दूसरों पर बोझ न बनें, अर्थात् अपने पाँवों पर आप खड़े हो सकें। मनु ने भी आदेश किया है कि शक्तिहीन मनुष्यों का कोई अधिकार नहीं कि वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।

जिनकी इन्द्रियाँ शिथिल हैं, शरीर शक्तिहीन है, जिनके चेहरों पर कान्ति नहीं, जो प्रसन्न-वदन नहीं, जो निराश और हताश रहते हैं, जो कंजूस हैं, जो घर में रहते हुए भी अपने भाई-बहन, माता-पिता तथा दूसरे सम्बन्धियों को सुख पहुँचाने के लिए तप और त्याग नहीं कर सकते, जो मीठा नहीं बोल सकते, क्रोध की मूर्ति बने रहते हैं, ज़रा-ज़रा-सी आपत्ति से अधीर हो जाते हैं, वे गृहस्थाश्रम जैसे तप और त्याग के आश्रम में प्रवेश करने के योग्य नहीं हैं। ऐसे स्वभाव और ऐसी प्रकृति के युवक-युवतियों को चाहिए कि वे गृहस्थाश्रम पर कृपा ही करें। इसमें प्रवेश करके इसे दूषित न करें।

गृहस्थाश्रम को वास्तविक रूप में पुण्यधाम और स्वर्गधाम बनाने के लिए वेद तथा शास्त्रों ने अत्यन्त उपयोगी गुर बतलाये है—

१. पति तो समझे कि जिस देवी का मैंने हाथ ग्रहण किया है उसे सब प्रकार से सुखी रखना मेरा कर्त्तव्य है। यह देवी मेरे मन-रूपी पक्षी का घोंसला है। यह देवी मेरे हृदय की मलिका बन चुकी है। इसके अतिरिक्त संसार की सारी और देवियाँ मेरे लिए माता, बहिन और बेटी के समान हैं; और पत्नी यह समझे कि मेरा धर्म यही है कि मैं पतिदेव की पूजा करूँ। सब प्रकार से उनके सुख का ध्यान रखूँ। हम दोनों अभिन्न-हृदय होकर जीवन-नौका को सागर से पार ले चलेंगे।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मेरे मन-मन्दिर का देवता मेरा पति ही है। इसमें और कोई स्थान नहीं पा सकता।

भारतीय इतिहास में पतिव्रत-धर्म को आर्य-संस्कृति का विशेष चिह्न माना गया है और ऐसी देवियों को आदर्श के नाम से पुकारा गया है। माता सीता, सती सावित्री, पूजनीय अनसूया, सती पद्मिनी तथा ऐसी ही अन्य देवियों का नाम जिह्वा पर आते ही चित्त प्रफुल्लित हो उठता है।

जब भगवान् राम के साथ सीता भी वन की ओर चल पड़ीं तो मार्ग में महर्षि अत्रि का आश्रम आया। महर्षि की पतिव्रता सत्य-परायण पत्नी अनसूया को जब पता लगा कि सीता अपने पतिव्रत धर्म को निभाने के लिए कठिन तपस्या करने को तैयार हुई है, तो माता अनसूया बड़ी प्रसन्न हुई और उन्होंने सीता जी से कहा—

नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाऽशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्त्ता तासां लोकाः महोदयाः ॥
वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड ११७। ११ ॥

"स्वामी नगर में रहें या वन में, भले हों या बुरे, जिन स्त्रियों को वे प्रिय होते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकों की प्राप्ति होती है।"

सीता जी को क्या यह पहले ही निश्चय न था? था और पूरा निश्चय था, इसलिए जब भगवान् राम ने वनों-जंगलों के भयंकर दृश्य खींचकर सीता जी को घर ही में रहने की प्रेरणा की तो सीता जी ने कितने सुन्दर शब्दों में कहा था—

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-विधु, सुरपुर नरक समान ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू।
पति - बिहीन सब शोक समाजू ॥
भोग रोग - सम भूषन भारू।
जम जातना सरसि संसारू ॥
प्राननाथ ! तुम्ह बिन जग माहीं।
मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ऐसा आदर्श रखनेवाली देवियाँ ही सती-साध्वी कहलाती तथा मान पाती हैं।

२. जिन परिवारों में मीठी वाणी का प्रयोग होता है, वहाँ आनन्द की वर्षा होती है। गरीबी में भी प्रसन्नता उनके आँगन में खेलती है। द्रौपदी के एक कड़वे वचन ने ही महाभारत का युद्ध करा दिया था, जिसने भारत का ऐसा नाश किया कि आज तक सँभल नहीं पाया। वेद ने आदेश दिया है कि "तुम्हारी जिह्वा के अग्रभाग में भी और अन्तिम भाग में भी मधु भरा हो।"

एक कवि ने ठीक कहा है—"वाणी की मधुरता से बढ़कर कोई मधुरता नहीं। कड़वी वाणी से कोई उपकार भी करे तो प्यारा नहीं लगता। कोयल बोलते समय क्या लाकर दे देती है और कौआ क्या ले जाता है?"

तुलसीदास जी ने भी कहा है—

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरन यह मन्त्र है, तजि दे वचन कठोर॥

३. जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। जिस कुल में स्त्री से भर्त्ता और भर्त्ता से स्त्री सदा प्रसन्न रहते हैं, उस कुल में नित्य अटल कल्याण बना रहता है।

४. जहाँ प्रतिदिन हवन-यज्ञ, सन्ध्या, अतिथियों का स्वागत और स्वाध्याय होता है, वहाँ ऐश्वर्य, धन, सम्पत्ति और यश नित्य बढ़ता रहता है।

५. वेद ने स्त्री को पुरुष की दासी नहीं बनाया, अर्धाङ्गिनी बनाया है। पति-पत्नी दोनों दम्पती कहलाते हैं। वेद में 'दम' घर का नाम है। दम्पती के अर्थ—'घर के दो स्वामी' हैं, जैसे पति स्वामी है, वैसे पत्नी भी स्वामिनी है। आजकल कितने ही स्थानों से देवियों के साथ क्रूर तथा दुर्व्यवहार की बातें सुनने में आती हैं। स्त्रियों के साथ पशुवत् व्यवहार होता है। यह अत्याचार आज नहीं तो कल उस कुल का नाश कर देगा। जिन देवियों के साथ ऐसा व्यवहार होता हो, उनके लिए यही उचित है कि जगत्पति प्रभु को अपना पति समझें और उसी के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

भजन में मन लगायें तथा स्त्री-जाति के कल्याण के लिए समय दें।

६. अथर्ववेद के तीसरे काण्ड के तीसवें सूक्त में पारिवारिक जीवन का बहुत सुन्दर चित्र चित्रित किया गया है। हरेक परिवार में इस सूक्त का पाठ तथा उसके अनुसार आचरण होना चाहिए।

७. सारे परिवार में आस्तिकता की लहर चलती रहे। परिवार का हरेक व्यक्ति परमात्मा को अपना मित्र समझे और नित्यप्रति यह प्रार्थना करे—

अजरासस्ते सख्ये स्याम।
पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व॥

"प्रभो! हम मैत्री में कभी बूढ़े न हों। तेरी मैत्री हमारे साथ कभी पुरानी न हो, सदा नई बनी रहे। पिता बनकर, हे भगवन्! हम पुत्रों को आप प्यार करें।"

८. नेक कमाई (खेती, पशु-पालन, मज़दूरी, व्यापार, शिल्प-उद्योग तथा राज्य-प्रबन्ध) के द्वारा जो धन मिले, उसी से निर्वाह किया जाय। पाप की कमाई घर में न आने पाय। किसी का स्वत्व दबाकर, रिश्वत लेकर, खाद्य पदार्थों—अन्न, घी, तेल, ओषधियों में मिलावट करके कमाया हुआ धन पाप का धन है। ऋग्वेद (१।१।३) में यह आदेश है कि, "मनुष्य अग्नि के साथ धन का उपयोग करे, जो दिन-पर-दिन पुष्टिकारक ही हो, यश से युक्त हो और सबसे बढ़कर वीर पुरुषोंवाला हो।" यहाँ 'अग्नि के साथ' का प्रयोजन है, धर्म-कार्यों के साथ।

९. नेक कमाई से प्राप्त किया धन पाकर अभिमान न करे। यह धन आता-जाता रहता है। जितना अधिक धन प्राप्त करे या परिवार में जो कोई अधिक सेवा और परिश्रम करे, उतना ही अधिक वह नम्र होता चला जाये। अभिमान न करे। अभिमान सारी सेवा और पुरुषार्थ पर पानी फेर देता है।

१०. मनुष्य-समाज की सेवा का कोई-न-कोई काम जारी रहना चाहिए। अकेले नहीं खाना चाहिए। बाँटकर खाना चाहिए। जो कुछ आप कमाते हैं, इसपर केवल आपका ही अधिकार नहीं। परिवार और समाज के अतिरिक्त प्राणिमात्र का भी इसपर अधिकार है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

११. प्रत्येक परिवार में प्रथम तो तीन, अन्यथा एक गाय तो अवश्य ही होनी चाहिए। प्रत्येक गृहस्थी के लिए यज्ञ करना आवश्यक है और यज्ञ के लिए घृत तथा दूध। तीन दुधारू गौएँ सदा घर में रहेंगी, तभी यज्ञ हो सकेंगे। यज्ञों के अतिरिक्त सारे परिवार को शुद्ध घी, दूध, मक्खन, दही, पनीर आदि नाना पदार्थ मिलते रहेंगे। वेद ने गाय की महिमा वर्णन की है। ऋग्वेद के छठे मण्डल के २८वें सूक्त का छठा मन्त्र देखिये—

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु॥

ऋ० ६। २८। ६॥

"हे गौओ! तुम दुबले को भी हृष्ट-पुष्ट बना देती हो। कुरूप को भी रूपवान् बना देती हो। हे भली वाणियो! घर को भद्र (भला, कल्याणयुक्त) बना दो। हमारी सभाओं में तुम्हारी बड़ी शक्ति कही जाती है।"

इस बात को सदा सामने रखो कि अन्न का मन पर प्रभाव पड़ता है। गाय के दूध का भोजन सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। आपके शरीर तथा मुखमण्डल पर विदेशी क्रीमें मलने से कान्ति तथा तेज नहीं आयेगा; न ही नकली घी खाने से। केवल गाय का शुद्ध घृत-दूध ही यह गुण पैदा करेगा। इस प्रकार का जीवन बना लेने से आप अपने-आपको मनुष्य-समाज के योग्य बना सकेंगे और साथ ही प्रभु-दर्शन के लिए भी; सत्य और सुन्दर संकल्प की जो नींव रखी गई थी, उस पर आप ऐसा मन्दिर निर्माण कर लेंगे, जिस मन्दिर में आपकी मनोकामना पूरी हो सकेगी।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तमाहुः परमां गतिम् ॥
कठ-उपनिषद् ६ । १० ॥

४. मन्दिर में प्रवेश

मन्दिर तो बना, परन्तु मन्दिर में प्रवेश कौन कर सकेंगे? प्रभु-दर्शन का अधिकार तो मनुष्यमात्र को है। यहाँ ऊँच-नीच, रंग और देश-विदेश का कोई झगड़ा नहीं। यही एक मार्ग और स्थान है, जहाँ न साम्प्रदायिकता है, न जाति-अभिमान; न प्रदेश और स्वदेश का कोई भेद है, न वर्ण-आश्रम का। भाषा और प्रान्त का कोई विचार नहीं। परन्तु सत्य यह है कि प्रभु केवल उनको ही दर्शन देंगे जिन्होंने अपने-आपको इसका अधिकारी बना लिया होगा।

मेरे अनुभव में यह आया है कि जनता में प्रभु-दर्शन की पिपासा है। वह इस प्यास को बुझाने का यत्न करती है। कुछ स्वार्थी लोग जनता की इस पिपासा का दुरुपयोग करते हैं। ऐसे लोगों ने प्रभु-दर्शन की दुकानें-सी खोल रखी हैं। जनता वहाँ जाती है और लाभ की जगह हानि उठाती है। ऐसी दुकानों में गये हुए श्रद्धालुओं को सन्मार्ग नहीं दिखलाया जाता, अपितु वहाँ स्वार्थ-सिद्धि की जाती है।

एम० ए० अथवा वेदतीर्थ की श्रेणी में प्रविष्ट होने के लिए जो विद्यार्थी आते हैं, उनसे पहले यह पूछा जाता है कि उन्होंने पहली श्रेणियों की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ली हैं या नहीं? उनके प्रमाणपत्र देखे जाते हैं और पूरी तसल्ली कर लेने के पश्चात् उन्हें उचित श्रेणी में प्रविष्ट किया जाता है। परन्तु प्रभु-दर्शन की सबसे ऊपर की श्रेणी में प्रविष्ट होने के लिए कुछ भी नहीं देखा जाता और साधक को आते ही अनीमा (बस्ती) कराने के पश्चात् प्रभुदर्शन के लिए बिठला दिया जाता है। इस श्रेणी में बिठलाने से पूर्व जिन श्रेणियों की परीक्षाएँ देनी होती

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हैं, वे एक-दो नहीं, अधिक हैं। इनमें से सबसे पहली श्रेणी में उत्तीर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है। इस पहली श्रेणी का नाम है, यम। दूसरी का है, नियम। ये दोनों बड़ी दुर्गम घाटियाँ हैं। तीसरी श्रेणी है, आसन। चौथी है, प्राणायाम। पाँचवीं प्रत्याहार, छठी धारणा, फिर सातवीं ध्यान आती है। इन सात के पश्चात् समाधि है। परन्तु आजकल साधक भी यही चाहता है और योग के दुकानदार भी कि पहली श्रेणियों को जाने दो और समाधि में पहुँचा दो। यह व्यवहार शास्त्र मर्यादा और यथार्थता के सर्वथा विपरीत है।

'यम' किसे कहते हैं? योगदर्शन, साधनपाद के तीसवें सूत्र में इसका उत्तर दिया गया है—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। योग (प्रभु-दर्शन) के जो आठ अंग शास्त्र ने बतलाये हैं, इनके अनुष्ठान के बिना हृदय की गाँठ नहीं खुलती; अज्ञान, अविद्या, रोगादि क्लेश और अशुद्धि का नाश नहीं होता। इनके नाश के बिना प्रभु-दर्शन नहीं हो सकता। इन आठ अंगों में प्रधान अंग 'यम' है।

योग-दर्शन ने तो यमों का पहला स्थान आत्म-दर्शन के लिए रखा है, परन्तु मेरा यह अटल विश्वास है कि आधुनिक संसार के सारे क्लेशों, दुःखों और आपत्तियों का अन्त करने का एकमात्र साधन भी ये यम ही हैं। अमेरिका, रूस, इंग्लैंड, यूरोप और एशिया के दूसरे सारे देशों के विद्वान् संसार के जिन भय, अशान्ति, भूख और असन्तोष को सहस्रों योजनाएँ बनाकर भी दूर नहीं कर पाये, उन सबका अन्त योग की यह पहली श्रेणी ही कर सकती है। अब यम के पाँचों अंगों पर दृष्टि डालिये—

अहिंसा

मन, वचन और कर्म के द्वारा गन्दी मनोवृत्तियों के साथ किसी प्राणी को मानसिक या शारीरिक हानि या पीड़ा पहुँचाना हिंसा है और

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सारे प्राणियों के हित के लिए मन, वचन तथा कर्म द्वारा पवित्र मनोवृत्तियों से कार्य करना अहिंसा है। अहिंसा के अर्थ यह नहीं कि भीरु, कायर और दुर्बल की तरह अत्याचार सहन करते चले जाओ। अहिंसा यह भी नहीं है कि धर्म, जाति और देश पर आक्रमण करनेवालों के आगे हाथ जोड़े जायें। न ही अहिंसा यह है कि यदि अनाचारी, डाकू, पापी लोग अबलाओं पर अत्याचार कर रहे हों, माताओं को अपमानित कर रहे हों, धन-सम्पत्ति लूट रहे हों, भयभीत जनता को उनके घरों से निकालकर स्वयं उनपर अधिकार जमा रहे हों तो हम कायरों की भाँति खड़े देखते रहें। अहिंसा यह भी नहीं है कि कोई पागल अपने शस्त्र से अपने को और दूसरों को घायल कर रहा हो तो फिर भी उसका शस्त्र न छीनो। यदि कोई पुरुष ऐसी बातों को अहिंसा कहता है, तो वह शास्त्र के मर्म को नहीं समझता। हिंसा शब्द 'किसी के प्राण ले लेना' और अहिंसा 'किसी को न मारना' ही के अर्थों में नहीं आता।

वास्तव में अहिंसा या हिंसा का सम्बन्ध मनोवृत्ति से है। एक कुशल और योग्य डॉक्टर रोगी का पेट चीरता है या टाँग काट देता है, दाँत उखाड़ देता है, एपैण्डिक्स का ऑपरेशन करता है और ऐसा करते हुए कुछ रोगियों की मृत्यु भी हो जाती है, तो क्या ऐसे डॉक्टर को आप हिंसक कहेंगे? कदापि नहीं। क्योंकि वह यह सारा कार्य सात्त्विक वृत्ति से कर रहा है। सच्चा क्षत्रिय जब युद्ध में देशद्रोहियों का हनन करता है, तो वह हिंसा नहीं करता; अपितु पुण्यलोक का भागी होता है। वेद ने आदेश किया है—

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः।
ये वा सहस्रदक्षिणास्ताँश्चिदेवापि गच्छतात्॥

ऋ० १०। १५४। ३॥

"जो संग्रामों में युद्ध करनेवाले हैं, जो शूरवीरता से शरीर को त्यागनेवाले हैं और वे जिन्होंने सहस्रों दक्षिणाएँ दी हैं, तू उनकी गति को प्राप्त हो!"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ऋग्वेद में ही यह प्रार्थना आती है—

आसंयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।।

ऋ० ६ । २२ । १० ।।

"हे इन्द्र ! शत्रुओं को मारने के लिए हमें संयमवाला, बहुत बड़ा और सदा बना रहनेवाला कल्याण दे !"

फिर ऋग्वेद के ये मन्त्र तो हिंसकों का सर्वथा हनन करने का कितना उत्साहजनक पाठ पढ़ाते हैं—

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ।।

ऋ० १० । १५२ । ३ ।।

"हे वीर ! राक्षसों का संहार कर । हिंसक को कुचल डाल । दुष्ट शत्रुओं की दाढ़ें तोड़ दे । जो तुम्हें दास बनाना चाहें, उन वैरियों के क्रोध को चूर कर दे ।"

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।

ऋ० १० । ८६ । ६ ।।

"अरे, यह घातक मुझे अबला समझे बैठा है न ! मैं अबला नहीं, वीरांगना हूँ, वीर की पत्नी हूँ । मौत से लड़नेवाले मेरे सखा हैं । मेरा पति संसार में अपनी तुल्यता नहीं रखता ।"

परेणैतु पथा वृकः परमेणोत तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ।।

अथर्व० ४ । ३ । २ ।।

"अरे भेड़िये ! मुझसे दूर रहना । अरे चोर ! मुझसे दूर रहना । ओ साँप ! मुझसे दूर रहना । ओ पापी ! मुझसे दूर रहना । सावधान ! क्यों मेरे पास आकर अपने जीवन से हाथ धोना चाहते हो ?"

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूराननु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ।।

अथर्व० ५ । २९ । ११ ।।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"सदा ही हे वीर ! तू राक्षसों का संहार करता आया है। राक्षस तुझे युद्धों में जीत नहीं सके। अपनी इस परम्परा को स्थिर रख। उन मार-काट मचानेवाले मांस-भक्षी राक्षसों को भस्म कर दे। देख, वे तेरी चमचमाती हुई तलवार से बचने न पायें !"

इन पवित्र मन्त्रों में हिंसा का आदेश है। जिस प्रकार स्वरक्षा-निमित्त मिले शस्त्र को एक उन्मत्त पुरुष जब अपने ही को हनन करने के लिए प्रयोग करने लगता है, तो वह उससे छीन लिया जाता है; इसी प्रकार मनुष्य-चोला, जो आत्म-कल्याण के लिए था, यदि दूसरे की या अपनी हानि के लिए प्रयोग किया जाने लगता है, तो ऐसे व्यक्ति का भला इसी में है कि वह चोला उससे छीन लिया जाये। यह हिंसा नहीं, हिंसा का अन्त करना है। परन्तु यह सारा कार्य राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, भय, ईर्ष्यादि वृत्तियों से उसी प्रकार सर्वदा पृथक् होना चाहिए, जैसे कि चीर-फाड़ करनेवाले डॉक्टर का होता है।

हिंसा तीन प्रकार की बताई जाती है—

१. आध्यात्मिक, २. मानसिक, ३. शारीरिक।

आध्यात्मिक हिंसा वह है, जिससे अपनी आत्मा को मलिन कर लिया जाये। जब गन्दी मनोवृत्ति से दूसरों को हानि पहुँचाने का यत्न होगा, तो ऐसा करनेवाला आत्मघाती हो जायेगा और ईशोपनिषद् के कथनानुसार, वह घने अँधेरे में ढकी हुई नीच योनियों में भेज दिया जायेगा।

मानसिक हिंसा यह है कि मन द्वारा दूसरे के प्रति बुरा चिन्तन करना। तन द्वारा यदि मैं किसी अन्य के लिए बुरे विचार करता हूँ, तो वे बुरे विचार मेरे मन को कलुषित कर देंगे और मैं स्वयं अपने मन की हिंसा करनेवाला बन जाऊँगा।

शारीरिक हिंसा यह है कि अपने शरीर द्वारा किसी को हानि पहुँचाना, या किसी का प्राण हरण कर लेना। इन सब प्रकार की हिंसा से बचने के लिए ईशोपनिषद् ने जो मार्ग बतलाया है, उसी का अनुकरण सबको करना चाहिए—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।। ईश उप० ६ ।।

"जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों को परमात्मा में ही (या अपने आत्मा से पृथक् नहीं) निरन्तर देखता है और सम्पूर्ण प्राणियों में परमात्मा को देखता है (या सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मस्वरूप को देखता है) उसके पश्चात् वह कभी भी किसी से घृणा नहीं करता ।"

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।। ईश उप० ७ ।।

"जिस समय परब्रह्म परमेश्वर को भली-भाँति जाननेवाले ज्ञानी पुरुष के लिए सम्पूर्ण प्राणी आत्मा ही (अपना आप ही) हो सकते हैं उस अवस्था में एकत्व देखनेवाले उस पुरुष के लिए कौन-सा मोह रह जाता है और कौन-सा शोक ?"

यह है अहिंसा का सच्चा स्वरूप । जब मनुष्य प्राणिमात्र को अपना ही अंग समझने लगे, अपने से पृथक् किसी को जाने ही नहीं, तब वह किसी से भी घृणा कैसे कर सकता है ? और जब वह किसी से भी घृणा नहीं करेगा, तो यम के पहले साधन अहिंसा के व्रत को वह पूरा कर लेगा । तब हमारी प्राण-रक्षा के लिए किसी भी प्राणी के प्राण को हरण करने की भावना कहाँ रहेगी ? तब अपनी या अपने परिवार की पेट-पूजा और वैभव के लिए किसी दूसरे को हानि पहुँचाने का विचार ही कहाँ रहेगा ? तब अपना स्वार्थ सामने नहीं रहेगा, न स्वार्थ-सिद्धि के लिए किसी को कष्ट-क्लेश पहुँचाया जा सकेगा; अपितु सब प्राणियों के सुख और कल्याण के लिए अपनी आहुति देने की भावना आ जायेगी । यही वास्तविक अहिंसा है ।

सत्य

योगदर्शन के भाष्यकार श्री व्यास जी ने सत्य के सम्बन्ध में लिखा है, "जैसी कोई वस्तु हो, वाणी और मन के द्वारा वैसा ही व्यवहार

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होना, या जैसा देखा या अनुभव किया हो और जैसा सुना हो, वैसा ही कथन करना और धारण करना तथा जिससे सब प्राणियों का उपकार हो और जिससे किसी प्राणी की हानि न हो, उसे पीड़ा न हो, उसका नाश न हो, वह सत्य है। यदि इस प्रकार कही हुई वाणी भी प्राणियों का नाश करनेवाली हो, तो वह सत्य नहीं है।"

तात्पर्य यह है कि केवल यथार्थ बात कह देना ही सत्य नहीं है, अपितु ऐसी वाणी बोलनी चाहिए, जो किसी के भी मन को पीड़ित न करे।

'महाभारत' के शान्तिपर्व में यह श्लोक आता है—

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद् भूतहितमत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम॥

"सत्य बोलना अच्छा है; परन्तु सत्य से भी ऐसा बोलना अच्छा है, जिससे सब प्राणियों का अत्यन्त हित होता हो, वही हमारे मत में सत्य है।" सत्य का भाव यह भी है कि सारे संसार में जो सार और सत्य वस्तु है, उसी को ग्रहण करना चाहिए। संसार स्वयं और संसार के सकल पदार्थ, जो दृष्टिगोचर हो रहे हैं, ये एक समय में नहीं थे या अव्यक्त थे। एक समय आयेगा, जब ये नहीं रहेंगे। जो पदार्थ बना है, वह नाश भी होगा। इन पदार्थों में आसक्त न होकर केवल एक सत्य आत्मा के साथ ही प्रेम करना भी सत्य है। सत्य ही को अपनाओ, अनृत को नहीं। परन्तु बोलते समय जहाँ सत्य को सामने रखो, वहाँ यह भी याद रखो कि आपका सत्य कहीं आपको हिंसा का अपराधी तो नहीं बना रहा है!

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्॥मनु०॥

"सत्य बोलो। प्रिय बोलो। वह सत्य न बोलो, जो अप्रिय हो।"

सत्य बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप॥
सत्य बिना नहीं दान है, सत्य बिना नहीं तप।
सत्य-हीन पूजा वृथा, सत्य-हीन नहीं जप॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

महाभारत के आदिपर्व के ७४वें अध्याय में तो यहाँ तक कह दिया है—

अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेव विशिष्यते ।।

यहाँ सहस्रों अश्वमेध यज्ञों से भी बढ़कर सत्य को बतलाया गया है। 'महाभारत' में सत्य से बढ़कर और कोई धर्म, और झूठ से बढ़कर और कोई पाप नहीं माना गया। शान्तिपर्व में आता है—

नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।।

वेद भगवान् ने तो परमात्मा के सम्बन्ध में यह आदेश किया है कि परमात्मा को सत्य ही प्यारा है, इसलिए भगवान् ने मनुष्य के हृदय में सत्य के लिए श्रद्धा पैदा की और असत्य के लिए अश्रद्धा। हमारा इतिहास स्पष्ट बतलाता है कि सत्य पर चलते हुए प्राण भी, पत्नी और पुत्र भी, राज्य और वैभव भी तथा सुख और आराम भी त्याग दिये गये। सत्य पर जो पुरुष आरूढ़ हो जाता है, उसके सम्बन्ध में 'योगदर्शन' में यहाँ तक लिखा है कि मन, वचन और कर्म के द्वारा जो सत्य में स्थित हो जाता है, ऐसे सत्यवादी की वाणी अमोघ हो जाती है। वह जो कहता है वही हो जाता है। वह जो आशीर्वाद किसी को दे, वह सिद्ध होता है।

अस्तेय

साधारणतः 'अस्तेय' के अर्थ चोरी न करने के होते हैं, परन्तु अस्तेय शब्द के केवल यही अर्थ नहीं होते। पराये धन को हथियाने के लिए मन, वचन और कर्म द्वारा प्रयत्न या उपाय करना तो स्तेय है ही; इसके अलावा इसके विशाल अर्थों की ओर भी ध्यान दें तो आजकल की दुनिया इसी में जकड़ी हुई नज़र आती है। यदि एक इस 'अस्तेय' पर ही दुनिया अमल करने लगे, तो पूंजीवाद, समाजवाद, वर्गवाद, साम्यवाद और सब-के-सब मत-मतान्तर एकदम समाप्त हो सकते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अन्यायपूर्वक किसी की सम्पत्ति, राज्य, धन या अधिकार को छीन लेना स्तेय कहलाता है। जो पूँजीपति गरीबों का रक्त चूसकर धन बना रहे हैं, जो मिल-मालिक मज़दूरों को कम मज़दूरी देते हैं, जो राज्य-अधिकारी अपने भारी-भरकम वेतनों और अपने गुट को प्रबल बनाने के लिए प्रजा पर भारी टैक्स लगाते हैं, जो व्यापारी लोभवश अन्नों के भण्डार जमा करके उनकी कीमतें चढ़ा देते हैं, जो दुकानदार खाद्य वस्तुओं—अन्न, घी, तेल, ओषधि इत्यादि में मिलावट करके धन कमाते हैं, वे जात्यभिमानी जो निर्बल को उन्नति नहीं करने देते, वे राज्य-कर्मचारी जो लोभवश प्रजा की जेब खाली करते हैं, रिश्वत लेते या देते हैं, वे व्यापारी जो जनता की आवश्यकताओं का दुरुपयोग करके चोरबाज़ारी द्वारा रुपया बटोरते हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरे देशों और जातियों में फूट पैदा करते हैं, दूसरे देशों को निर्बल बनाने के लिए उनके टुकड़े-टुकड़े करके विभाजन कर देते हैं, वे कपटी हैं; वे छली हैं जो नाना प्रकार से भोले-भाले लोगों को ठगते हैं, जो अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए सत्य-शास्त्रों में मिलावट करके अपने नये मत खड़े करते हैं। जो अपनी आय बनाये रखने के लिए जनता को झूठ और भ्रमजाल में फँसाकर रखते हैं, तथा वेद के सत्य-अर्थ को छिपाकर जो अनर्थ करते हैं, ये सब-के-सब लोग स्तेय (पाप) के भागी बन रहे हैं। मेरा पूर्ण विश्वास है कि स्तेय को आज संसार से निकाल दिया जाय और अस्तेय को अपना लिया जाय, तो फिर संसार में कोई युद्ध नहीं हो सकेगा। जब अस्तेय पर आचरण होने लगेगा, तब संसार में न अन्न की कमी रहेगी, न सोने-चाँदी की। संसार के प्रत्येक परिवार को धन, धान्य और ऐश्वर्य के भण्डार, गौएँ, घोड़े, मोटरें और वैभव के सब पदार्थ आवश्यकतानुसार प्राप्त होने लगेंगे।

'योगदर्शन' में अस्तेय का जो फल लिखा है, वह यही है—

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥

योग० साधनपाद ३७॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर सब रत्नों की प्राप्ति होती है।"

सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तु को रत्न कहते हैं। जिस व्यक्ति ने लोभ छोड़ दिया है, दूसरे का धन लूटने की कोई भावना जिसमें नहीं रही, जो धन से दूर भागता है, धन उसकी ओर भागता आता है। स्वामी रामतीर्थ ने अपने अनुभव से कहा था—

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
अब के जब नफ़रत हुई, यह बेकरार आने को है॥

जब एक व्यक्ति के त्याग से, निर्लोभ हो जाने से, अस्तेय पर दृढ़ स्थिति हो जाने से, अपने-आप रत्न मिलने लगते हैं, तो जब दुनिया के सारे मनुष्य इस मार्ग पर चल पड़ेंगे, तब दुनिया के सारे आर्थिक संकट क्यों न दूर हो जायेंगे? जब आर्थिक संकट न रहें, सबको भरपूर कोष मिल जाये, तब युद्ध की आवश्यकता भी कहाँ रह गई?

ब्रह्मचर्य

इन्द्रिय-संयम करते हुए वीर्य की रक्षा करना तथा हर समय यह भावना बनाए रखना कि मैं ब्रह्म की गोद में सुरक्षित हूँ, ब्रह्मचर्य कहलाता है।

ब्रह्मचर्य की कीमत आंकने से पूर्व यह भी जान लेना आवश्यक है कि जिस वीर्य की रक्षा के लिए यहाँ आदेश हुआ है, वह क्या वस्तु है? स्त्री-पुरुष, बालक-युवक जो कुछ अन्न, दूध, फल इत्यादि खाते हैं, वह जब पेट में पहुंचता है तो उसमें एक वैज्ञानिक क्रिया होने लगती है। एक प्रकार का तेज़ाब उस खाने में जा मिलता है। तब वह जठराग्नि से पकता है और पककर रस बनता है। यह रस फिर भट्टी पर चढ़ता है और उस रस से रुधिर (रक्त) बनता है। इस प्रकार रुधिर से फिर मांस बनता है। मांस से चर्बी तैयार होती है। चर्बी से अस्थि (हड्डी) बनती है। अस्थि से मज्जा बनती है और मज्जा से वीर्य बनता है। इतनी अवस्थाओं और नाना प्रकार की भट्टियों में पकते-पकते चालीस दिन के पश्चात् वीर्य बनता है—

यदेतद्रेतः तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"जो यह वीर्य है, वह पुरुष के सम्पूर्ण अंगों से उत्पन्न हुआ तेज है।"

इतनी कठिनाई से मिला हुआ यह रत्न सुरक्षित रखना चाहिए या नहीं ? एक इत्र निकालनेवाला गन्धी एक मन गुलाब के फूलों का पहले अर्क निकालता है। उस अर्क को फिर भट्टी पर चढ़ाकर उसका अर्क खींचता है। इसी प्रकार दस-बीस बार उसे भट्टी पर चढ़ाता है, तो अन्त में मन-भर फूलों का इत्र कुछ तोले ही पल्ले पड़ता है। इतना धन व्यय करके, इतना परिश्रम करके, जो इत्र प्राप्त हुआ है, क्या गन्धी उसे गन्दी नाली में फेंक देगा ? या उसे सँभालकर रखेगा और उसकी पूरी कीमत वसूल करेगा ? वीर्य एक अनमोल रत्न है। जो उसकी रक्षा करते हैं और फिर उसका सदुपयोग करते हैं, उनके सम्बन्ध में वेद ने कहा है कि वे मृत्यु को भी जीत लेते हैं। अथर्ववेद के ११वें काण्ड के पाँचवें सूक्त में यह आदेश है—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥

"देवता ब्रह्मचर्य से और तप से मृत्यु को सदा मार भगाते हैं। इन्द्र ब्रह्मचर्य से देवताओं के लिए दिव्य प्रकाश आता है।"

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति॥

अथर्व० ११। ५। १७॥

"ब्रह्मचर्य से और तप से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है।" आप कह सकते हैं कि संन्यासी, ब्रह्मचारी इत्यादि तो ब्रह्मचर्य की रक्षा कर सकते हैं, परन्तु गृहस्थ तो ऐसा नहीं कर सकते। यह बात यथार्थ नहीं; क्योंकि वीर्य-रक्षा जितने अच्छे ढंग से गृहस्थ कर सकते हैं, उतना दूसरे नहीं कर सकते। वीर्य-रक्षा का दो बातों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे हैं—

(१) आहार, और (२) विचार।

इनमें आहार पर गृहस्थ पूरा काबू रख सकते हैं। विचार सबके लिए बराबर है। संन्यासी को तो जैसी भिक्षा मिले उसी पर उसे निर्वाह करना होता है; परन्तु गृहस्थ तो आहार पर अधिकार रखता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाले या वीर्य को हानि पहुँचनेवाले जो पदार्थ हैं, उनका वह सेवन न करे। इसी प्रकार गन्दे सिनेमा न देखे; न ही इस प्रकार की पुस्तकें पढ़े, न ऐसी संगति करे। इस प्रकार से अपने अमूल्य रत्न की रक्षा करके गृहस्थ फिर देश और जाति का चाँद बननेवाला पुत्र और शोभा पानेवाली पुत्री पैदा करे। गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्य को पूर्ण करते हुए नर-नारी यदि मर्यादा में रहें, तो वे ब्रह्मचारी कहलाते हैं। ऋषि दयानन्द नें 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा है—

"जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के ही सदृश है।"

गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने का यह मतलब नहीं कि वीर्य-रक्षा की आवश्यकता नहीं रही है। वीर्य-रक्षा के बिना तो गृहस्थ-कार्य चल ही नहीं सकता। जो लोग यह समझते हैं कि विवाह करके वीर्यनाश करने की उन्हें छुट्टी मिल गई, वे न केवल अपने लिए अपितु अपनी पत्नी और सन्तान के लिए भी रोगों, आपत्तियों और अकाल मृत्यु का द्वार खोल देते हैं। गृहस्थ पुरुषों को यह तथ्य सदा सामने रखना चाहिए कि पत्नी कामवासना की पूर्ति के लिए नहीं; अपितु आपकी जीवन-यात्रा को सफल बनाने के लिए है। अतएव स्त्री जब गर्भवती हो जाय तो फिर पुरुष का यह धर्म हो जाता है कि वह ब्रह्मचारियों-वाला जीवन व्यतीत करे और स्त्री-सम्बन्ध न करे। ऐसी अवस्था में सम्बन्ध रखने से सन्तान व्यभिचारिणी होती है और अपनी शक्ति का भी व्यर्थ ह्रास होता है। देवियों के मन की अभिलाषा यही होती है कि उनके पतिदेव दीर्घ आयुवाले हों, सदा स्वस्थ रहें। ऐसी देवियों का कर्त्तव्य है कि अपने पति का ध्यान प्रभु-भजन और परोपकार के कामों में लगाकर, उनको कामवासना से बचाये रखें। गृहस्थ होते हुए पति-पत्नी जितना अधिक संयम से रहेंगे, वीर्य को सुरक्षित रखेंगे, सादा सात्त्विक भोजन करेंगे, खोटी संगत से बचकर सत्संग करते रहेंगे, वे उतना ही गृहस्थ-आश्रम को स्वर्गधाम बना लेंगे। बहुत अधिक सन्तान का कोई लाभ नहीं। सन्तान चाहे थोड़ी ही हो, परन्तु स्वस्थ

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सुन्दर, मेधावी, पराक्रमी, बलवान् और धर्मात्मा हो। तभी गृहस्थ-आश्रम सफल होता है।

इसके साथ यह भी विचारना चाहिए कि आधुनिक दुनिया की क्या अवस्था हो रही है। अन्न-संकट भयानक रूप धारण करता चला जा रहा है। जनसंख्या निरन्तर बढ़ती चली जा रही है। जनसंख्या के निरन्तर बढ़ते चले जाने से गम्भीर समस्याएँ सामने आ खड़ी हुई हैं। कुछ समय हुआ, प्रोफैसर जुलियन हक्सले ने लन्दन के वैज्ञानिकों की सभा में यह बताया था कि दुनिया की जनसंख्या बहुत बढ़ती जा रही है। दुनिया में हर तीन सैकण्ड के पश्चात् दो व्यक्ति बढ़ जाते हैं। दूसरे शब्दों में एक दिन में साठ हज़ार व्यक्ति दुनिया में अधिक हो जाते हैं। एक वर्ष के ३६५ दिनों में दो करोड़ उन्नीस हज़ार व्यक्ति दुनिया में बढ़ रहे हैं। यदि जनसंख्या के बढ़ने की यही रफ्तार रही तो दुनिया में मनुष्य के रहने तथा खाने की समस्या हल नहीं हो सकेगी।

विचारिये कि इस गम्भीर परिस्थिति में हमारा कर्त्तव्य क्या है? कर्त्तव्य यह है कि कुछ लम्बे काल के लिए अधिक सन्तान पैदा करने का विचार छोड़ दिया जाए। इसके दो बड़े लाभ ये होंगे कि दुनिया की समस्या के हल करने में आप सहायक बनेंगे और अपनी वीर्य-रक्षा से आपको लौकिक तथा अलौकिक सफलता भी मिलेगी।

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य-सूक्त में तो यहाँ तक आदेश है कि ६३६६ देवता ब्रह्मचारी के पीछे चलते हैं और ब्रह्मचारी पृथिवी तथा द्युलोक को जनता के अनुकूल बना लेता है। सबसे बढ़कर लाभ यह है कि वह प्रभु-दर्शन पाता है। इस सूक्त का दसवाँ मन्त्र तो स्पष्ट कहता है—

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद्
गुहानिधि निहितो ब्राह्मणस्य।
तौ रक्षति तपसा तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान्॥

अथर्व० ११।५।१०॥

"ब्रह्म-ज्ञान के दो कोष ब्रह्मचारी की बुद्धि में निहित हैं। एक समीप है और दूसरा हृदयाकाश की पीठ से परे। इन दोनों की ब्रह्मचारी अपने तप से रक्षा करता है और विद्वान् ब्रह्मचारी उस केवल

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ब्रह्म को प्रत्यक्ष करता है।"

मनुष्य-शरीर में पाँच कोष बतलाये जाते हैं—

(१) अन्नमय कोष, (२) प्राणमय कोष, (३) मनोमय कोष, (४) विज्ञानमय कोष, (५) आनन्दमय कोष।

इन पांच में से प्रभु-दर्शन से सम्बन्धित दो कोष हैं—विज्ञानमय और आनन्दमय कोष। विज्ञानमय तो बुद्धि के समीप है और आनन्दमय हृदयाकाश से परे। गृहस्थ होते हुए भी जिसने ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य का कोष एकत्र कर लिया है, वह ब्रह्मचारी विज्ञानमय कोषों की रक्षा करता हुआ ब्रह्म का साक्षात्कार करने के योग्य बन जाता है। बताइये, इतना बड़ा लाभ जिस अमूल्य रत्न की रक्षा से होता हो, क्या उस रत्न को सँभालकर नहीं रखना चाहिए? क्षण-भर के कल्पित सुख के लिए जो वास्तव में दुःखों का द्वार ही है, इस रत्न को खो देना कहाँ की बुद्धिमत्ता है?

महाशोक यह है कि आजकल का संसार इस अत्यन्त उपयोगी रत्न की ओर सर्वथा उलटा जा रहा है। अपने अनमोल मोतियों को कौड़ियों से भी कम कीमत के बदले लुटाता चला जा रहा है। युवकों और युवतियों को समझना चाहिए कि वे इस रत्न की रक्षा में शक्ति-भर पूरा प्रयत्न करें। संसार के आधे से अधिक रोग तथा कष्ट केवल ब्रह्मचर्य-पालन से ही दूर हो सकते हैं। फिर इतने अस्पतालों, इतने औषधालयों और डॉक्टरों की आवश्यकता नहीं रहेगी। दवाओं का खर्च सर्वथा कम हो जायेगा और यही धन दूसरे अच्छे कार्यों के लिए उपयोग में लाया जा सकेगा।

अपरिग्रह

यम के चार व्रतों का कुछ वर्णन हो चुका; अब पाँचवें व्रत पर विचार कीजिये। यह साधन तो आधुनिक काल के संसारी जीवों की लगभग सारी जटिल समस्याओं को सुलझाने का अचूक साधन है। अपरिग्रह का प्रयोजन यह है कि भोग के साधनों के संग्रह के लोभ से दूर रहना और किसी पर अपना कब्ज़ा न जमाना। आजकल दुनिया

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

परिग्रह के पाश से पीड़ित हो रही है। बड़े-बड़े देश परिग्रह में फँसकर पर-पीड़न का कारण बन रहे हैं। एक व्यक्ति को अपने जीवन-निर्वाह के लिए, अपने धर्म-कार्यों के लिए, अपने समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए, जितनी सामग्री चाहिए यदि वह उससे अधिक जमा करता है, तो वह परिग्रह में फँसता है। परिग्रह ही आज यह दृश्य दिखा रहा है कि एक ओर तो तन ढाँपने के लिए वस्त्र नहीं, और दूसरी ओर वस्त्रों का इतना भण्डार है कि उसकी रक्षा के लिए चौकीदार, पुलिस तथा सेना रखनी पड़ती है। एक व्यक्ति बीसियों मकानों, कोठियों और बँगलों का स्वामी है, दूसरे के पास सिर छिपाने, धूप-पानी से बचने के लिए एक कुटिया भी नहीं। एक ओर सोने-चाँदी, धन के ढेर हैं, दूसरी ओर विष खरीदने के लिए भी पैसा नहीं है। एक ओर अन्न के गोदाम भरे पड़े हैं, दूसरी ओर अकाल-पीड़ित भूख से तड़पते और सड़कों पर एड़ियाँ रगड़ते हुए मृत्यु के ग्रास बन रहे हैं।

अंग्रेज़ी राज्य में जब बंगाल में अकाल पड़ा, तो मैंने वहाँ देखा कि फौजी गोदामों में सहस्रों टन चावल पड़ा है और जनता भूख से मर रही है। डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने बतलाया कि दुर्भिक्ष की यह आपत्ति प्रभु की ओर से नहीं, अपितु यह तो लोभी मनुष्यों ही की कृपा का परिणाम है। आर्य प्रतिनिधि सभा ने तब साढ़े तीन लाख रुपये के चावल बंगाल के दुर्भिक्ष से पीड़ित बंगालियों के लिए भेजे थे। इन चावलों में से दो वैगनें वहाँ के तब के मन्त्रि-मण्डल के एक व्यक्ति ने चोर बाज़ार में बेच डालीं; क्षुधा-पीड़ित बालकों, देवियों और पुरुषों का रुदन भी ऐसे लोभियों को सन्मार्ग नहीं दिखला सका। यह है परिग्रह का भयंकर परिणाम!

संसार में आजकल वर्गवाद का जो संघर्ष चल रहा है, पूँजीपति एक ओर तथा मज़दूर दूसरी ओर हैं, एक-दूसरे के सर्वनाश की तैयारियाँ कर रहे हैं, यह सब परिग्रह की ही कृपा है। इस रोग की दवा अपरिग्रह है। एक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी आवश्यकताओं से अधिक संग्रह न करे और समष्टि को चाहिए कि वह अपनी फ़ालतू सामग्री वहाँ

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

भेज दे, जहाँ उसकी ज़रूरत है। प्रत्येक व्यक्ति यह समझे कि मैं किसी भी वस्तु का स्वामी नहीं; सारे संसार की सारी वस्तुओं का स्वामी केवल ईश्वर है। भूमि उसकी है। सोना-चाँदी उसके हैं। समुद्र उसके हैं। वन-पर्वत उसके हैं। नदियाँ उसकी हैं। अन्न उसी की पृथिवी तथा जल से मिलता है। मैं तो केवल भोग करनेवाला हूँ। फिर वह परिग्रह के पाप का भागी नहीं बनेगा।

रोटियाँ तो दो, तीन या चार ही खानी होती हैं, चाहे किसी के पास सेर-भर आटा हो या हज़ार मन। इससे अधिक खाना तो मृत्यु को शीघ्र बुलाना है। तब लोभ क्यों? यही लोभ परिग्रह है। इस लोभ से बचना अपरिग्रह है। विचार कीजिये, संसार को आज अपरिग्रह की आवश्यकता है या नहीं? क्या दुःखी संसार के रोगों की यह अचूक औषध नहीं है? अपरिग्रह का रूप एक कवि ने बहुत सरल शब्दों में यह बतलाया है—

साइँ इतना दीजिये, जा में कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

अपरिग्रह का दूसरा भाव यह है कि "बलात्कार से विषयों में गमन करनेवाली जो इन्द्रियाँ हैं, उन पर पूरा अधिकार रखना और उन्हें ज़बरदस्ती विषयों में न जाने देना।"

यम का अर्थ है वश में करना, शासन करना और मर्यादा में रखना। मृत्यु के देवता को भी यम इसीलिए कहते हैं कि वह सबको मर्यादा में स्थिर रखता है। यम के इन पाँच व्रतों में से एक-एक व्रत संसार का कल्याण करनेवाला है। 'यदि संसारी लोग इन पाँच व्रतों को प्रयोग में लायें, तो दुनिया एक बार फिर अपनी मर्यादा में स्थिर हो जायेगी और इसकी सारी विकट उलझनें भी सुलझ जायेंगी। योगदर्शन ने समाधि-अवस्था तक पहुँचने के लिए योग के आठ अंगों में से सबसे पूर्व यमों का वर्णन किया है। साधन-पाद के ३१वें सूत्र में स्पष्ट कहा है कि ये किसी एक देश, एक समय, एक जाति या एक काल के लिए नहीं हैं, अपितु ये सार्वभौम हैं। सब अवस्थाओं में, सब देशों में, सब जातियों और सब मनुष्यों को इन व्रतों का पालन करना चाहिए, क्योंकि ये 'सार्वभौम

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

महाव्रत' हैं। गृहस्थ भी इनका पालन करें और ब्रह्मचारी भी; वानप्रस्थ तथा संन्यासी भी। सम्पूर्ण मनुष्य-समाज—सारे राष्ट्र, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण के सारे देश, सारे सम्प्रदाय और सारे मतावलम्बी इनको प्रयोग में लायें।

पाँच नियम

यम के इन पाँच व्रतों को जीवन में ढालकर साधक पूछता है कि क्या अब प्रभु-दर्शन होंगे? ऐसे साधकों को ज्ञात रहना चाहिये कि अभी पहली श्रेणी की परीक्षा दी है। अब दूसरी श्रेणी में चलो। योगदर्शन के यमों के पश्चात् पाँच नियम बतलाये हैं, जिनका उल्लेख साधनपाद के ३२वें सूत्र में किया है—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।

"शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान—ये पाँच नियम हैं।"

शौच

शौच पवित्रता का नाम है। शरीर को बाहर-भीतर से शुद्ध-पवित्र रखनेवाला प्रसन्न-चित्त रहता है। जहाँ गन्दगी के ढेर हों, वहाँ आत्म-चिन्तन तो एक ओर रहा, ठहरने को भी जी नहीं चाहता। शरीर को स्वच्छ-सुन्दर बनाना, इसे औषध इत्यादि से स्वस्थ बनाये रखना, यह शरीर की शुद्धि है। शरीर के अन्दर चित्त, मन इत्यादि को पवित्र संकल्पों, विचारों से पवित्र बनाना भीतर की शुद्धि है। पता नहीं, कितने लम्बे काल से हम ये उपयोगी बातें भूल चुके हैं। हमें तो अभी ठीक-ठीक बैठना, चलना और खाना-पीना भी नहीं आता। एक बार मैं एक नगर के उत्सव पर गया। यह नगर अब पाकिस्तान में है। वहाँ के अधिकारियों ने मुझे कहा कि आपने आत्मा-परमात्मा पर व्याख्यान देना है। मैंने कहा, बहुत अच्छा। परन्तु जब मैं सभा-मण्डप में पहुँचा, तो क्या देखा—एक कोलाहल-सा मचा हुआ है। भजनीक महोदय भजन गा रहे हैं और शोर इतना है कि शायद ही किसी के पल्ले कुछ पड़ रहा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हो। यही नहीं, अपितु मैंने देखा कि सारे मण्डप में मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। कहीं गन्ने के छिलके पड़े हुए है, कहीं शर्बत गिरा पड़ा है, कहीं बालक शौच बैठे हैं। यह दृश्य देखकर मैंने कहा—क्या यहाँ आत्मा-परमात्मा की चर्चा हो सकेगी ? जिन्हें यह भी ज्ञात नहीं कि किस स्थान पर क्या करना है, गन्द, केले इत्यादि के छिलके कहाँ फेंकने हैं, उनकी दौड़ आत्मा तक कैसे हो सकेगी ? यही नहीं, अपितु जिह्वा गन्दी, मन गन्दा। बिना किसी संकोच के मैंने बड़े-बड़े व्यक्तियों को अत्यन्त अश्लील गालियाँ बोलते सुना है। क्या ऐसे लोग आत्म-चिन्तन का अधिकार रखते हैं ? अभी शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे जनता भीतर-बाहर के शौच पर आरूढ़ हो सके। शौच से न केवल शरीर के तत्त्व का ही पता मिल जाता है अपितु, शौच साधक को आत्म-दर्शन का अधिकारी बना देता है।

सन्तोष

दूसरा नियम सन्तोष है। इसका प्रयोजन यह है कि पूरी तत्परता, पुरुषार्थ और प्रयत्न से किये हुए कर्मों का जो फल प्राप्त हो, उससे अधिक लोभ न करना। सन्तोष का अर्थ अकर्मण्यता नहीं है, आलस्य और प्रमाद नहीं है; अपितु अपने कर्त्तव्य को पूरे पुरुषार्थ से पूर्ण करना और उसका जो फल मिले, उसी पर सन्तुष्ट रहना है। लालसा और तृष्णा का दास न बनना, सन्तोष है। पुरुष का धर्म पुरुषार्थ करना है। कर्म करना तो मनुष्य के अधिकार में है। अतएव प्रभु से मिले फल पर तृष्णा न बढ़ायें। इस प्रकार सन्तोष करने से योगशास्त्र का कहना है कि उत्तम-से-उत्तम सुख मिलता है। तृष्णा जितनी बढ़ेगी, सुख उतना ही कम होता जायेगा। तृष्णा जितनी घटेगी, सुख उतना ही बढ़ेगा—

चाह मिटी चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कुछ ना चाहिए, सोई शाहंशाह।।

तृष्णा ऐसी आग है, जो सन्तोष के जल के बिना बुझती नहीं। सन्तोष ही इसे शान्त कर सकता है। सन्तोष न हो, फिर तृष्णा इतनी भड़कती है कि भीतर-बाहर सब भस्म कर देती है—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तृष्णा अग्नि प्रलय की, तृप्त न कबहूँ होय।
सुर नर मुनि अरु रंक सब, भस्म करत है सोय ॥

सन्तोष ही सब महादुःखों से बचने का उपाय है। मनु भगवान् ने सन्तोष के सम्बन्ध में लिखा है—

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥

"सुख की अभिलाषा करनेवाले परम सन्तोष का सहारा लेकर अपने-आपको काबू में रखें। सन्तोष ही सुख की जड़ है और इसका उलट अर्थात् तृष्णा दुःख की जड़ है।"

तप

तीसरा नियम तप है। तप का प्रयोजन यह है कि उद्देश्यप्राप्ति के लिए कर्त्तव्य निभाते हुए, सुख आये या दुःख, गर्मी हो या सर्दी, नाना प्रकार के पदार्थ मिलें या भूख, मान हो या अपमान, कष्ट-क्लेश हों या आराम, इन सबको प्रसन्नता से सहन करना और अपने लक्ष्य की ओर ही बढ़ते चले जाना।

यक्ष ने युधिष्ठिर से जो प्रश्न पूछे थे, उनमें से एक यह भी था—'तपसः किं लक्षणम्?'—तप के क्या लक्षण हैं? युधिष्ठिर जी ने उत्तर दिया था कि **'स्वधर्मवर्त्तित्वम्'**—अपने कर्त्तव्य कर्म को करते रहना ही तप है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है कि—

तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति ॥

—भृगुवल्ली, दूसरा अनुवाक।

"तप से ब्रह्म को जानने की इच्छा कर, क्योंकि तप ही ब्रह्म है" अर्थात् तप ब्रह्म की प्राप्ति का पूर्ण साधन है।

परन्तु आजकल तो तप के भी उलटे अर्थ लिये जा रहे हैं। केवल शरीर को पीड़ा देने का नाम तप रह गया है। उपनिषद् ने स्पष्ट कहा है कि—

तपसाऽनाशकेन।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"जो शरीर का नाशक न हो वह तप है।"

परन्तु अब तपस्वी उसी को समझा जाता है, जो अपनी बाँह या टाँग सुखा दे, सर्वथा नग्न रहे, पंचाग्नि तपे, महीनों भूखा रहे, जो सर्वथा अन्न छोड़ दे या केवल फल खाये। जो अन्न, फल, दूध सब-कुछ छोड़ दे, वह सबसे बड़ा तपस्वी है और जो केवल वायु-सेवन करे, उसका स्थान तपस्वियों में सबसे ऊपर है। परन्तु ऐसे सारे तप तामसी तप हैं। शास्त्र की दृष्टि में इनका अधिक मूल्य नहीं है। वाचस्पति मिश्र ने 'योगदर्शन' में लिखा है—

तावन्मात्रमेव तपश्चरणीयं वै यावता धातुवैषम्यमापद्येत।

"तप उतना ही करना चाहिए, जितने से धातुओं में विषमता पैदा न हो, अर्थात् वात, पित्त, कफ, कुपित न हों।"

गीता ने तीन प्रकार के तप बतलाये हैं—शरीर का, वाणी का और मन का। शरीर का तप यह है कि सात्त्विक आहार-विहार रखें। वाणी का तप यह है कि सत्य, प्रिय और मित भाषण करें। मन का तप यह है कि अपवित्र विचारों से मन को बचाकर, उसे शुद्ध-पवित्र संकल्पों से भरपूर रखें।

स्वाध्याय

यह चौथा नियम है। ओ३म् का जप, गायत्री का तीन व्याहृतियों-सहित जप और वेद, उपनिषद् आदि पवित्र ग्रन्थों का पाठ, स्वाध्याय कहलाता है। इसके साथ ही सदा अपने जीवन की घटनाओं पर दृष्टि रखना कि मैं किधर जा रहा हूं, नित्य अपना अध्ययन करना (आत्म-विश्लेषण) स्वाध्याय में ही सम्मिलित है।

जब वेद, उपनिषद् या किसी अन्य पवित्र ग्रन्थ को लेकर आप स्वाध्याय करने बैठें तो पूरी श्रद्धा, प्रेम और भक्ति-भरे मन से बैठें। इस भावना से स्वाध्याय करें कि मानो आप अपनी जीवन-समस्याओं को सुलझाने के लिए भगवान् और ऋषियों से वार्तालाप करने लगे हैं। एक साधारण राज्यकर्मचारी से जब आप भेंट करते हैं तो पूरी तन्मयता से उसकी बातों में ध्यान जमाते हैं। इन पवित्र ग्रन्थों का पाठ करते

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

समय तो आप भगवान् के पास बैठे हैं। ऋषियों का सत्संग कर रहे हैं। तब क्या पूरी एकाग्रता और श्रद्धा से आप उनकी बातें न सुनेंगे ? ऐसी भावना से किया गया स्वाध्याय आपको सन्मार्ग दिखलायेगा। तैत्तिरीय आरण्यक में लिखा है कि "स्वाध्याय पाप से बचानेवाला है।" और शतपथ ब्राह्मण ने तो स्वाध्याय की इतनी महिमा वर्णन की है कि स्वाध्याय को सारे पुण्य-कर्मों से, दानों से और यज्ञों से भी बढ़कर बताया है—

ये ह वै के च श्रमा इमे द्यावा अन्तरेण, स्वाध्यायो हैव तेषां परमता काष्ठा, य एवं विद्वान् स्वाध्यायम् अधीते तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। शा० ब्रा० ११। ५। ७। २॥

"इस द्यौ और पृथिवी के अन्दर जितने प्रकार के परिश्रम हैं, स्वाध्याय ही इन सबकी पराकाष्ठा है। जो ठीक-ठीक जानता हुआ स्वाध्याय करता है उसके लिए वह उत्तम है। इसलिए स्वाध्याय नियम से करना चाहिए।"

पुनः आगे चलकर इसी ब्राह्मण में कहा है—

"वह नख के अग्र तक तप तप रहा है, जो ठीक जानता हुआ स्वाध्याय करता है।"

शतपथ ब्राह्मण में तो यहाँ तक लिखा है, "वह (स्वाध्यायशील पुरुष) एकाग्र-मन हो जाता है, पराधीन नहीं होता, दिन-प्रतिदिन अपने प्रयोजनों को साधता है, अपने-आपका परम चिकित्सक बन जाता है। इन्द्रियों का संयम, सदा एकरस रहना, ज्ञान की वृद्धि, यश, और लोगों को सुधारने तथा निपुण करने का काम—ये सब फल स्वाध्याय और प्रवचन करनेवाले को मिलते हैं।"

(शतपथ ब्राह्मण ११। ५। ७। १)

कौन-सी वस्तु रह गई है, जो स्वाध्याय से नहीं मिलती ? योग-दर्शन के साधनपाद के ४४वें सूत्र में यह लिखा है कि "स्वाध्याय से इस देवता का सम्बन्ध, मेल व साक्षात् होता है।"

श्री व्यास जी ने अपने भाष्य में लिखा है कि "देवता, ऋषि और

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सिद्ध लोग स्वाध्यायशील के दर्शन को जाते हैं और उसके कार्य में सहायक सिद्ध होते हैं।"

जब स्वाध्याय से इतना कुछ प्राप्त होता है, तो क्या यह आवश्यक नहीं कि हम प्रतिदिन स्वाध्याय किया करें? स्वाध्याय के सम्बन्ध में मेरा अपना अनुभव यह है कि इससे ज्ञान की भारी वृद्धि होती है, एकाग्रता प्राप्त होती है और प्रभु तथा प्रकृति के तत्त्व का पता लगता है। कितनी ही बार तो ऐसा भी हुआ कि जब जीवन-यात्रा की कोई जटिल समस्या सामने आ खड़ी हुई और सद्भावना तथा श्रद्धा-भक्ति से वेद को खोलकर प्रभु से पूछा है कि अब मेरा मार्ग किधर है, तो वेद द्वारा भगवान् ने पथ-प्रदर्शन किया। आप भी ऐसा पथ-प्रदर्शन स्वाध्याय के द्वारा पा सकते हैं।

गायत्री-महिमा—

स्वाध्याय में ओ३म् के जप तथा गायत्री मन्त्र के जप का जो विधान है, वह भी परम लक्ष्य तक पहुँचानेवाला है। प्रभु-दर्शन का ज़िक्र करते हुए ओ३म् के सम्बन्ध में आगे फिर लिखूंगा। यहाँ गायत्री के सम्बन्ध में 'देवी भागवत' के ये श्लोक देखिये—

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥८९॥
तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि।
गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥९०॥

देवीभाग०, स्कन्ध १२, अ० ८ ॥

"गायत्री ही की उपासना सनातन है। सब वेदों में इसी की उपासना और शिक्षा दी गई है, जिसके बिना ब्राह्मण का सर्वथा अधः-पतन हो जाता है ॥८९॥ द्विजमात्र के लिए इतने से ही कृतकृत्यता है। अन्य किसी उपासना और शिक्षा की आवश्यकता नहीं। गायत्रीमात्र में निष्णात द्विज मोक्ष को प्राप्त होता है ॥९०॥"

गायत्री-मन्त्र को जो गुरु-मन्त्र कहा गया है, तो इसमें विशेष तथ्य है। चारों वेदों में इसका वर्णन है। ऋग्वेद में ३।६२।१० का मन्त्र

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

गायत्री मन्त्र ही है। सामवेद के १३।३।३ उत्तरार्चिक में और यजुर्वेद में दो-तीन स्थानों में गुरुमन्त्र का आदेश है। ३।३५, ३०।२ और ३६।३ पर अथर्ववेद में तो यह सारा रहस्य ही खोल दिया है कि यह वेद-माता, गायत्री-माता, द्विजों को पवित्र करनेवाली, आयु, स्वास्थ्य, सन्तान, पशु, धन, ऐश्वर्य, ब्रह्मवर्चस् देनेवाली और प्रभुदर्शन करानेवाली है। छान्दोग्योपनिषद् ने भी इसकी महिमा का गायन किया है।

बादरायण के ब्रह्मसूत्र १।१।२५ पर शारीरिक भाष्य में श्री शंकराचार्य जी ने लिखा है, "गायत्री-मन्त्र के जप से ब्रह्म की प्राप्ति होती है।"

भगवान् मनु ने यह आदेश दिया है—"तीन वर्ष तक साधनों के साथ गायत्री का जप करते रहने से जप-कर्त्ता को परब्रह्म की प्राप्ति होती है।"

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥ मनु० २।८२॥

इसी प्रकार महाभारत के भीष्मपर्व ४।३८ में और मनुस्मृति के दूसरे अध्याय के अन्य श्लोकों में भी गायत्री-मंत्र की महानता प्रकट की गई है।

महर्षि व्यास का कथन है, "पुष्पों का सार मधु है, दूध का सार घृत है और चारों वेदों का सार गायत्री है। गंगा शरीर के मल धो डालती है और गायत्री-गंगा आत्मा को पवित्र कर देती है।"

अत्रि ऋषि का यह कथन बड़ा मार्मिक है—"गायत्री आत्मा का परम शोधन करनेवाली है।"

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने 'सत्यार्थप्रकाश' के तृतीय समुल्लास में मनु भगवान् का एक श्लोक देकर यह आदेश किया है—

"जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान होकर जल के समीप स्थित होके नित्य-कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थ-ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल-चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।"

चरक ऋषि ने 'चरक-संहिता' में यह कहा है कि "जो ब्रह्मचर्य-

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सहित गायत्री की उपासना करता है और आँवले के ताज़ा (वृक्ष से अभी-अभी तोड़े हुए) फलों के रस का सेवन करता है, वह दीर्घ-जीवी होता है।"

'गायत्री-मंजरी' में तो गायत्री ही को सब-कुछ वर्णन कर दिया गया है और लिखा है—

भूलोकस्यास्य गायत्री कामधेनुर्मता बुधैः।
लोक आश्रयणेनामुं सर्वमेवाधिगच्छति ।। २६ ।।

"विद्वानों ने गायत्री को भूलोक की कामधेनु माना है, संसार इसका आश्रय लेकर सब-कुछ प्राप्त कर लेता है।"

श्री पं० मदनमोहन जी मालवीय कहा करते थे कि "गायत्री-मन्त्र एक अनुपम रत्न है। गायत्री से बुद्धि पवित्र होती है और आत्मा में ईश्वर का प्रकाश आता है। गायत्री में ईश्वर-परायणता का भाव उत्पन्न करने की शक्ति है।"

माण्डले (बर्मा) जेल की काल-कोठरी में बैठकर 'गीता-रहस्य' लिखनेवाले बाल गङ्गाधर तिलक ने लिखा था—"गायत्री मन्त्र के अन्दर यह भावना विद्यमान है कि वह कुमार्ग छुड़ाकर सन्मार्ग पर चला दे।"

महात्मा गांधी तो गायत्री-मन्त्र के निरन्तर जप को रोगियों तथा आत्मिक उन्नति चाहनेवालों के लिए बहुत उपयोगी बताया करते थे।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी के जीवन में कई बार ऐसा हुआ कि उन्होंने चित्त को एकाग्र तथा बुद्धि को निर्मल बनाने के लिए गायत्री-मन्त्र का जाप बतलाया। इतना बड़ा महत्त्व रखनेवाला यह गुरु-मन्त्र है।

स्त्रियों को गायत्री मन्त्र के जाप का अधिकार—

परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि आधुनिक काल में भी कुछ ऐसे लोग हैं जो यह कहते सुने जाते हैं कि स्त्रियों को गायत्री मन्त्र के जप का अधिकार नहीं है। यह ऐसा अनर्थ है, जिसका समाधान बहुत आवश्यक है। वेद भगवान् से लेकर पुराणों और स्मृतियों तक—सबने

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ही वेद में स्त्रियों का अधिकार माना है। जब वेद-मन्त्रों की द्रष्टा ऋषिकाएँ भी हुई हैं, तब इनके वेद पढ़ने के अधिकार पर अँगुली कौन उठा सकता है ? फिर अनेक ब्रह्मवादिनी देवियों का वर्णन इतिहास में आता है। 'महाभारत' के शल्यपर्व में एक तपस्विनी का इतिहास आया है, जो वेदाध्ययन करनेवाली और योग-सिद्धि को प्राप्त थी। इसका नाम 'सिद्धा' था। भरद्वाज की पुत्री श्रुतावली वेद की पूरी पण्डिता थी। भक्त शाण्डिल्य की पुत्री 'श्रीमती' निरन्तर वेदाध्ययन में प्रवृत्त रहती थी। 'शिवा' नामक ब्राह्मणी वेदों में पारंगत थी। इसी प्रकार भारती, मैत्रेयी, गार्गी, सुलभा, द्रौपदी, वयुना, धारिणी, वेदवती आदि कितनी ही देवियों का वर्णन आता है, जो वेद पढ़ती थीं। वेदवती को तो चारों वेद कण्ठाग्र थे। यही नहीं, अपितु देवियों को ब्रह्मा की पदवी भी मिलती थी। जब चारों वेद पढ़ने का अधिकार देवियों को प्राप्त है, तो क्या गायत्री-मन्त्र वेदों के बाहर है ?

पुराणों ने भी स्त्रियों को अधिकार दिया है कि वेद-मन्त्र ग्रहण करें। 'भविष्यपुराण' के उत्तरपर्व ४।१३ में लिखा है—

> या स्त्री भर्त्रा वियुक्तापि स्वाचारे संयुता शुभा।
> सा च मन्त्रान् प्र गृह्णातु सभर्त्रा स्वनुज्ञया॥

"उत्तम आचरणवाली विधवा स्त्री वेद-मन्त्रों को ग्रहण करे और सधवा स्त्री अपने पति की अनुमति से मन्त्रों को ग्रहण करे।"

वसिष्ठ स्मृति २१।७ में लिखा है—

"यदि स्त्री के मन में पति के प्रति दुर्भाव आये तो उस पाप का प्रायश्चित्त करने के साथ १०८ बार गायत्री-मन्त्र के जपने से वह पवित्र होती है।"

ऐसे अनेक प्रमाण हैं, परन्तु विस्तार-भय से वे यहाँ लिखे नहीं जाते। ऊपर के प्रमाण ही पर्याप्त हैं जिनसे सिद्ध होता है कि जो मठ-धारी देवियों को गायत्री-जप से रोकते हैं वे वेद, शास्त्र, पुराण, इति-हास आदि सबसे मुँह मोड़ते हैं।

गायत्री-मन्त्र यह है—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

इस पवित्र मन्त्र की व्याख्या में कितने ही ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं और अभी कितने और लिखे जायेंगे; परन्तु इस मन्त्र की पूर्णरूपेण व्याख्या फिर भी न हो सकेगी, क्योंकि यह चार वेदों का सार है। जिन साधकों ने इसका जप करना है वे बड़े-बड़े ग्रन्थों को सामने नहीं रख सकते और बिना भावार्थ के भी जप अधिक लाभ नहीं पहुँचाता। जप करनेवाले को ज्ञात होना चाहिए कि मैं भगवान् के समक्ष बैठा हुआ क्या कह रहा हूँ, उस प्रियतम से क्या निवेदन किया जा रहा है और कौन-सी माँग उसके सामने रखी जा रही है।

मैं तो गायत्री-मन्त्र को आत्म-समर्पण का मन्त्र समझता हूँ। जिस प्रकार एक युवती अच्छी तरह जानती हुई विवाह-मण्डप में पवित्र अग्नि के सामने बैठी पूर्ण निश्चय के साथ अपने पतिदेव के आगे अपने-आपको समर्पण करती हुई, पति को अपना वर बनाती है, इसी प्रकार गायत्री-मन्त्र का जप करनेवाला अपने प्रियतम से कहता है कि "हे प्यारे, मैं तेरे सुन्दर शुद्ध तेज का ध्यान करता हूँ। तू ही वरने योग्य है। तू, जो कि सारे जगत् का उत्पन्न करनेवाला है, सबको प्रकाश देनेवाला है। प्राण-प्यारे! दुःखों को दूर करने और सुखों को देनेवाले रक्षक और स्वामिन्! अपनी बुद्धि को तेरे अर्पण करता हूँ। इसे अपनी ओर ले चल!"

जब एक देवी एक बार अपने पति को वर लेती है, तो फिर वह सदा के लिए उसी की हो जाती है। गायत्री-मन्त्र में उपासक या साधक भगवान् को अपना वर चुनता है और अपने-आपको उसके सुपुर्द कर देता है। अब उसके हृदयरूपी सिंहासन पर सिवाय उस प्यारे प्रभु के और कोई बैठ ही नहीं सकता। यदि प्रभु के अतिरिक्त कोई और उसमें आता है तो जैसे देवी का पतिव्रत धर्म कलुषित हो जाता है, वैसे ही भक्त की भक्ति को भी कलंक लगता है। गायत्री-मंत्र का जप करते-करते भक्त बार-बार प्रभु से यही याचना करता है कि मैं तेरा हो चुका। मेरी बुद्धि को नकेल तेरे हाथ में है। हे प्रभो!

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अपनी ओर ही इसे ले चल। मन तो एक ही है न! जब यह प्रभु को भेंट दिया, तो फिर यह और कहाँ जायेगा? कबीर कहता है—

कबिरा यह मन एक है, चाहे जहाँ लगाय।
भावे प्रभु की भक्ति कर, भावे विषय कमाय॥

जब गायत्री-मन्त्र द्वारा इसे प्रभु में लगा दिया, उसी के हवाले सब-कुछ कर दिया, तो फिर उसी के होकर, हर समय उससे यही कहना चाहिए कि—

नैनों की कर कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डालकर, पिय को लेउँ रिझाय॥

जब एक बार अपनी बुद्धि तथा मन प्रभु के अर्पण कर दिया तो फिर प्रभु की आज्ञा के बिना वह कोई और विचार अपने अन्दर ला ही नहीं सकेगा। जब गायत्री का पाठ करते हुए भगवान् को 'भूः'—प्राण-प्यारा कह दिया, तो फिर प्रभु के बिना हमारे प्राण रहेंगे कैसे? जब किसी का प्राण-प्यारा बिछुड़ जाता है, तो उसके विरह में जो अवस्था उसके प्रेमी की होती है, वही अवस्था भगवान् की भावना से क्षणमात्र दूर हो जानेवाले भक्त की भी हो जाती है। विरह का अर्थ है अपने प्रियतम के प्रेम पर मर-मिटने की लगन। एक कवि का कथन है—

उर में दाह, प्रवाह दृग, रह-रह निकले आह।
मर मिटने की चाह हो, यही विरह की राह॥

परन्तु गायत्री की साधना करनेवालों को मरने की आवश्यकता नहीं पड़ती, अपितु उनमें गायत्री-जप से तथा तदनुकूल आचरण करने से एक नया जीवन आ जाता है। हाँ, स्वाध्याय के इस अंग से, भक्ति की एक अद्भुत तरंग से, भक्त तरंगित हो उठते हैं।

ईश्वर-प्रणिधान

पाँचवाँ नियम ईश्वर-प्रणिधान है। इसका भाव यह है कि जो भी कर्म किये जायँ, फल-सहित उन सारे कर्मों को ईश्वर के अर्पण कर दिया जाय। इसी को भक्ति-विशेष का नाम भी दिया जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यह नियम पाँचों नियमों का प्राण है। इसी एक नियम को धारण कर लेने से समाधि की सिद्धि बतलाई गई है—

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे है मोर॥

ऋग्वेद ७।३१।५ में भक्त भगवान् से निवेदन करता है—

ते अपि क्रतुर्मम।

"मेरे कर्म आप ही के अर्पण हों, आप ही के लिए हों!"

तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान का वर्णन योगदर्शन में तीन स्थानों पर आया है। एक तो साधनपाद के पहले ही सूत्र में, जहाँ इन तीनों को क्रिया-योग (अमली योग) का नाम दिया गया है; और दूसरे साधनपाद के ३२वें सूत्र में। यहाँ इन तीनों के पहले शौच और सन्तोष को भी जोड़ दिया गया है। भगवान् पतञ्जलि की दृष्टि में तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान का विशेष महत्त्व है। उन्होंने अपने योगदर्शन में इसका दो बार वर्णन किया है और इसमें ईश्वर-प्रणिधान का और भी बढ़कर महत्त्व है। गीता में भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

गीता ९। २७॥

"हे कुन्ती-पुत्र! तुम जो कार्य करो, भक्षण करो, यज्ञ और दान करो, वह सब मेरे (परमेश्वर के) ही अर्पण करो।"

यही ईश्वर-प्रणिधान है। ईश्वर-प्रणिधान की भावना रखनेवाला भक्त फिर जो भी कर्म करेगा, पूरी सावधानी से करेगा। वह जानता है कि यह कर्म और इसका फल प्रभु-अर्पण हो जाना है। जब हमने किसी बड़े राज्याधिकारी या साधु-सन्त-महात्माओं को श्रद्धा से कोई वस्तु, वस्त्र, फल या मिष्ठान्न भेंट करना हो तो प्रयत्न यही होगा कि उत्तम-से-उत्तम वस्तु दी जाय, फल कच्चा या गला-सड़ा न हो, मिठाई शुद्ध घी की हो। यह वस्तु महाराज की भेंट है। अच्छी-से-अच्छी ढूंढकर ले चलो। जब भेंट भगवान् को करनी हो, तो भी क्या यही

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रयत्न न होगा कि अब कोई खोटा कर्म न होने पाय ? मन, वचन, कर्म ऐसे हों कि इनके द्वारा जो कुछ भी हो, उसे प्रभु के सामने भेंट करते हुए लज्जा न आये। तब तो जीवन ही पलट जायेगा। कोई खोटा या छोटा विचार निकट भी नहीं आने पायेगा। इस प्रकार ईश्वर-परायण हुआ भक्त उसी के लिए खायेगा, उसी के लिए पियेगा, उसी के लिए जियेगा और उसी के लिए मरेगा। गीता के इस श्लोक में कितना स्पष्ट आदेश है—

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

गीता० ५। १० ॥

"जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा के अर्पण करके, आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह जल में कमल के पत्ते के सदृश पाप से लिप्त नहीं होता।"

'ईश्वर-प्रणिधान' अनन्य भक्ति का भी वाचक है और प्रभु-कृपा प्राप्त करने का यह सबसे बड़ा साधन है। भक्त-वत्सल प्रभु, भक्त-मन-रंजन भगवान् तथा त्रिताप-हर्ता परमेश्वर में सम्पूर्ण अनुराग जब हो जाता हैं तो भक्ति भक्त को कृतकृत्य कर देती है। भक्ति 'ईश्वर में अनुराग' ही का दूसरा नाम है और वास्तविक रूप में भक्त ही सम्पूर्ण रूप से अपनी, अपने शुभ कर्मों की भेंट प्रभु के आगे चढ़ा सकता है।

जब भक्त की ऐसी अवस्था होगी तो प्रभु भी दयालु हो जायेंगे। वे भी अपने भक्त का ध्यान रखेंगे और उसे सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते रहेंगे। आखिरकार भक्त का मनोरथ सिद्ध कर देंगे।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ओ३म् तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ऋ० १ । २२ । २० ॥

"व्यापक प्रभु के श्रेष्ठ रूप को ज्ञानी पुरुष सदा द्युलोक में व्याप्त सूर्य की तरह देखते हैं।"

५. किसके दर्शन ?

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान—इन दस महाव्रतों और यम-नियमों के अनुष्ठान से भक्त अब इस योग्य हो गया है कि वह प्रभु-दर्शन के लिए पवित्र मन्दिर में प्रवेश कर सके। परन्तु मन्दिर में जाने से पूर्व यह तो निश्चय कर लो किसके दर्शन करने चले हो ? आप कहेंगे, 'दर्शन प्रभु के और किसके ?' ठीक है। दर्शन तो प्रभु के ही करने हैं; परन्तु ये तो नाम-मात्र हैं। यह प्रभु कैसा है ? किस कमरे में रहता है ? लाल, पीला, काला किस रंग का है ? कोई उसका रूप या हुलिया तो बताओ ? जब तक इन बातों का ज्ञान न हो जाय, तब तक अपने प्रियतम को कैसे पहचान सकोगे ? कैसे समझोगे कि दर्शन हो गये ?

याज्ञवल्क्य ने एक बार गार्गी से कहा था—

"ब्रह्म के जाननेवाले उसे अक्षर, अविनाशी, कूटस्थ कहते हैं। वह न मोटा है, न पतला। न छोटा है, न लम्बा। न अग्नि की तरह लाल है। यह बिना स्नेह के है, बिना छाया के और बिना अँधेरे के है। न वायु है, न आकाश है। वह अप्रसंग है। रस से रहित, गन्ध से रहित है। उसके नेत्र नहीं, कान नहीं, वाणी नहीं, मुख नहीं, मात्रा नहीं।"
(बृह० ३ । ७ । ७)

"वह महान् है। दिव्य है। अचिन्त्य रूप है। सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर प्रतीत होता है। वह दूर से अधिक दूर है। तथापि यहाँ ही हमारे

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

निकट है। देखनेवालों के लिए वह यहीं (हृदय की गुफा में) छिपा हुआ है।"

फिर इसी उपनिषद् (२। २। १) में लिखा है—

"वह हर जगह प्रकट है, निकट है। गुहाचर (हृदय की गुफा में विचरनेवाला) प्रसिद्ध है। वह एक बड़ा आधार है, जिसमें यह सब पिरोया हुआ है, जो चलता है, साँस लेता है और आँख झपकता है। यह सारा स्थूल और सूक्ष्म, जो तुम जानते हो, यह सब उसी में पिरोया हुआ है। वह पूजा के योग्य है। सबसे श्रेष्ठ है। प्रजाओं की समझ से परे है।"

वेद में उसका वर्णन इस प्रकार है—

१. एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
ऋ० १०। ९०। ३; यजु० ३१। ३॥

'इतनी बड़ी (भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल से सम्बद्ध जितना जगत् है, यह सारी) इस प्रभु की महिमा है और प्रभु स्वयं इससे बड़ा है। (तीनों काल में होनेवाले) सारे भूत इसका एक पाद है और इसका (शेष) त्रिपाद जो अमृत एवं अविनाशी-स्वरूप है, वह अपने प्रकाश में है।"

प्रयोजन यह है कि उसकी तो कोई सीमा है नहीं। हाँ, कुछ दिग्दर्शन कराने के लिए कह दिया कि यह सारी दुनिया, ये सारे लोक, ये सारी पृथिवियाँ, ये सारे नक्षत्र इत्यादि, ये सब उसके एक पैर में आते हैं। बाकी तीन पैर अभी और हैं।

२. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
ऋ० १। १६४। ४६॥

"उस एक शक्ति को अनेक रूपों में वर्णन करते हैं; इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। वही दिव्य सौन्दर्य का भण्डार है। उसी प्रकाशस्वरूप प्रभु को यम और मातरिश्वा कहते हैं।"

३. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥ यजु० ३२। १॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"वही अग्नि, वही आदित्य, वही वायु, वही चन्द्रमा, वही शुक्र, वही ब्रह्म, वही जल और वही प्रजापति है।"

४. यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः॥
ऋ० २।१२।२॥

"जिसने (आदि में पिघली हुई होने के कारण) लहराती हुई पृथिवी को दृढ़ जमा दिया और जिसने प्रकुपित हुए (आदि में अग्नि-वर्षण करते हुए) पर्वतों को शान्त किया, जिसने अन्तरिक्ष को बड़ा विशाल बनाया, जिसने द्यौ को धारण किया, हे मनुष्यो! वही शक्तिशाली प्रभु है।"

५. यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः॥
ऋ० २।१२।५॥

"जिसके विषय में पूछते हैं वह कहाँ है और कई यहाँ तक कह देते हैं कि वह नहीं है, वही है जो कि भयंकर बनकर ऐसे शत्रुओं (घमण्ड में उनकी प्रजा को पीड़ित करनेवालों) की पुष्टियों को शक्तियों की तरह मरोड़ डालता है, उसके लिए श्रद्धा रखो। हे मनुष्यो, वही शक्तिशाली प्रभु है।"

६. यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः॥
ऋ० २।१२।६॥

"जो दीन-दुःखियों को हिम्मत बँधाता है, जो विपद्ग्रस्त भक्त की पुकार सुनता है, जो यज्ञमय जीवन-धारियों का प्रतिपालक है, लोगो! वही सुन्दर और छबीला देव इन्द्र है।"

७. यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
अ० १०।७।३२॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"भूमि उसकी पाद-प्रतिष्ठा है। अन्तरिक्ष उसका उदर है। द्युलोक उसका माथा है। उस परम ब्रह्म को प्रणाम हो!"

८. यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
अ० १०।७।३३॥

"सूर्य और नित्य नया चन्द्रमा उसकी आँखें हैं, आग उसका मुख है। उस परम ब्रह्म को नमस्कार हो!"

९. प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः॥
अ० १०।८।१३॥

"वह प्रजापति (सबके) अन्दर विराजमान है। वह दिखाई नहीं देता (पर) नाना प्रकार से प्रकट हो रहा है। सकल संसार उस (की शक्ति) के एक भाग का फल है। शेष भाग की क्या कहें? और कैसे कहें?"

१०. यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन॥
अ० १०।८।१६॥

"सूर्य उसी से उदय होता और उसी में लीन हो जाता है। सचमुच वही सबसे बड़ा है। उसके बराबर और कोई नहीं हो सकता।"

ऐसा प्रभु रहता कहाँ है? कोई भी तो ऐसा स्थान नहीं, जहाँ वह न रहता हो। परन्तु उसके दर्शन हृदय ही में होते हैं। उपनिषद् ने उसका पूरा पता भी बता दिया है—

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवाँस्तस्मात्सर्वगतः शिवः॥
श्वेताश्वतर ३।११॥

"वह भगवान् सब ओर मुख, सिर और ग्रीवावाला है। सर्वव्यापी है और समस्त प्राणियों की हृदयरूपी गुफा में निवास करता है। इस-लिए वह (शिव) कल्याण-स्वरूप प्रभु सब जगह पहुँचा हुआ है।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।
श्वेताश्वतर ३ । १३ ।।

"अंगुष्ठ-मात्र परिमाणवाला अन्तर्यामी परम पुरुष (परमेश्वर) सदा ही मनुष्यों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित है। मन का स्वामी है तथा निर्मल हृदय और शुद्ध मन से ध्यान में लाया जाता है (प्रत्यक्ष होता है)। जो इस परब्रह्म परमेश्वर को जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं।"

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ।।
श्वेता० ३ । २० ।।

"वह सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म और बड़े से भी बहुत बड़ा परमात्मा, जीव-हृदयरूपी गुफा में छिपा हुआ है। उस सबकी रचना करनेवाले, प्रभु की कृपा से (जो भक्त) इस संकल्प-रहित प्रभु को और उसकी महिमा को देख लेता है, वह सब प्रकार के दुःखों से रहित हो जाता है।"

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित् ।
श्वेता० १ । १२ ।।

"इसको जानो, जो सदा तुम्हारे आत्मा में वर्तमान है। इससे परे कुछ जानने योग्य नहीं है।"

शंकर भगवान् ने 'शिवधर्मोत्तर' से जो श्लोक आत्मदर्शन के सम्बन्ध में प्रमाण दिए हैं, उनमें से पहले श्लोक में यह लिखा है—

शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः ।

"योगीजन शिव को अपने आत्मा में देखते हैं, न कि प्रतिमाओं में।"

दर्शन के दो प्रकार

प्रभु-दर्शन के दो प्रकार हैं। एक तो अपनी इन आँखों से उसका विराट् रूप देखना; जितना यह ब्रह्माण्ड है, इस सारे में उसको ओत-

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

स्रोत देखना। उसी की सत्ता से यह सूर्य चमकता है। जैसे मनुष्य-शरीर में आत्मा काम करता है, इसी प्रकार सारे जगत् को परमात्मा चलाता है। इन बाह्य नेत्रों से देखते तो सब हैं, परन्तु फिर भी देखते नहीं हैं। देखते होते तो इस जगत् की एक-एक वस्तु में उसी के दर्शन करते।

यदि सूर्य को किसी तरह बोलने की शक्ति मिल जाये, तो उसे कहता सुनेंगे—

"हे धरती पर विचरनेवालो! मुझे जाज्वल्यमान और चमकता हुआ देखकर भ्रम में न उलझ जाना। यह चमक मेरी नहीं है, उसकी है जो मेरे भीतर-बाहर विराजमान है। मेरी चमक का कारण वही है। सूर्य मैं नहीं हूँ, वह है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। उसकी आज्ञा है, मैं आपके लिए चमकूँ, आपको प्रकाश और गर्मी दूँ, अन्धकार छुड़ा दूँ। मैं तो केवल उसकी आज्ञा का पालन करता हूँ। यदि वह एक क्षण के लिए भी मुझे छोड़ दे, अपनी शक्ति लौटा ले तो फिर आप मुझे कहीं देख भी न सकें। उषा की लालिमा के साथ जब मैं अनेक रंगों के साथ उदय होता हूँ, तो आप निहार-निहार नाचते हैं, खुश होते हैं, गीत गाते हैं। परन्तु वह सौन्दर्य मेरा नहीं, उस प्रभु का है। गीत भी मेरे नहीं, उसीके हैं।"

नदियाँ, जो दिन-रात अबाध गति से पृथिवी के एक छोर से दूसरे छोर तक भागती फिरती हैं, इनका कल-कल निनाद तो सभी सुनते हैं, परन्तु इस निनाद में निहित इस आवाज़ को सुननेवालों ने ही सुना है कि—

"शीतल जल पीना चाहो तो पियो। स्नान करना चाहो तो करो। मैले वस्त्र धोकर उज्ज्वल कर लो। सूखी खेती सींचकर हरी-भरी बना लो। पनचक्कियाँ चलाकर आटा पीस लो। बिजली पैदा करो। कार-खाने चलाओ। जो चाहो, सो करो। हम आपकी सेवा में उपस्थित हैं। परन्तु भूलो मत कि यह गति हमारी नहीं है। यह सब-कुछ उस प्रभु की देन है, जिसकी आज्ञा से अनवरत बहती हुई हम न कभी थकती हैं, न हारती हैं। हमारे गीत न गाओ, उस भगवान् का धन्यवाद करो, जो जल के एक-एक बिन्दु में ओत-प्रोत है। उसकी आज्ञा से ही हम बहती हैं। उसकी आज्ञा न हो, तो आज रेत में लोटने लगें।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

किनारे से टकराती, सागर की उतरती-चढ़ती लहरों का गौरव सभी ने सुना है; लेकिन समझनेवालों ने ही समझा कि असंख्य जलचरों को और एक अनोखी सृष्टि को अपने गर्भ में रखनेवाला यह अथाह सागर कहता है कि—

"इस सारी धरती को मैं समेटे हुए था। प्रभु की आज्ञा से मैं स्वय सिमट गया। अब फिर उसे अपने में समेटने के प्रयत्न में लगा हुआ हूँ। न पहले मेरी कोई सामर्थ्य थी, न अब है। उसी के आदेश से, उसी की शक्ति से, उसीकी प्रेरणा से ज्वारऔरभाटे के खेल खेला करता हूँ। मेरे भीतर की गम्भीरता, उसकी गम्भीरता है। मेरी बाह्य चंचलता, उसकी चंचलता है। मेरे भीतर-बाहर जो कुछ भी है, वही है। मैं कुछ भी नहीं। केवल उसकी कृपा का पात्र हूँ कि लाखों-करोड़ों रत्नों को अपने पेट में सँजोकर रखे हुए हूँ।"

वे गर्जते हुए मेघ, चमकती हुई बिजली, भीषण भयंकर आँधियाँ, वरुण और इन्द्र देवता भी यही कहते हैं—

"न हम गर्ज सकते हैं, न चमक सकते हैं। यह गर्जन, यह चमक, यह गति, उसी की दी हुई है। हम तो निष्प्राण हैं, गूँगे, अन्धे, बहरे। उसके संकेत पर हरकत में आते हैं; वह जैसे नचाता है, नाचने लगते हैं। उसी के इशारे पर खामोश हो जाते हैं। यह गर्जन उसी का है। यह चमक उसी की है। यह ज्योति उसी की है।"

विशाल विस्तृत स्तब्धता और उन बालू के कणों में से उठता हुआ झुलसा देनेवाला तेज आपने देखा है? यात्री समझता है यह मुझे झुलसा रहा है। लेकिन परखनेवालों ने परखा और सुननेवालों ने सुना। वह तेज कह रहा था—

"मैं कौन हूँ झुलसानेवाला? मैं तो प्रकृति का निष्प्राण अंश हूँ। मेरा तेज है ही कहाँ? यह तो उस प्रभु का तेज है, जिसे मैं व्यय कर रहा हूँ। कारण यह है, मैं केवल उपकरण हूँ। हे यात्री! मेरी क्या सामर्थ्य कि तुझे सुखी या दुःखी कर सकूँ। उसकी आज्ञा पालने के लिए, उसकी बनाई हुई मर्यादा को पूरा करने के लिए, मैं स्वयं इस निर्जन मरुस्थल में पड़ा हूँ।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यह दीखनेवाली दुनिया ! कितनी आश्चर्यमय है यह ? इस पृथिवी ही का आदि-अन्त अभी तक पाया नहीं जा सका। दो अरब वर्षों से मनुष्य टक्कऱें मार रहा है। ५ करोड़ ५५ लाख वर्गमील भूमि और १४ करोड़ १० लाख ५० हज़ार वर्गमील समुद्र की खोज नहीं हो सकी। और तो और, एक हिमालय पर्वत की थाह मनुष्य नहीं पा सका। तब इसके ऊपर के संसार को कौन जाने ? जो कुछ अब तक बड़े-बड़े वैज्ञानिकों और ज्योतिषियों ने अनुमान लगाये हैं, वे अधूरे हैं। इन दिखलाई देनेवाले नक्षत्रों में से बहुत थोड़ों का नामकरण-संस्कार हो सका है। तनिक इस ऊपर की दुनिया पर एक दृष्टि तो डालें !

सौर-मण्डल (सोलर सिस्टम) उन पृथिवी, मंगल, शनि इत्यादि असंख्य नक्षत्रों का नाम है, जो सूर्य को केन्द्र बनाकर घूम रहे हैं। पश्चिमी विद्वान् पहले यह समझते थे कि यह 'सोलर सिस्टम' ही सब-कुछ है; परन्तु विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ अब शास्त्र की यह बात भी स्वीकार की जाने लगी है कि ऐसे अनेक सौरमण्डल विद्यमान हैं। प्रोफ़ेसर एडिंग्टन ने बतलाया है—"अब तक हम तीन सौ करोड़ तारा-सूर्यों का पता लगा सके हैं।" यह जो इतने अगणित तारा-सूर्य हैं, प्रायः हरेक में एक-एक सौरमण्डल का केन्द्रस्थल है। और वे तारा-सूर्य कितने-कितने बड़े हैं, फिर उनके साथ-साथ सम्बन्धित तारागण, नक्षत्र, ग्रह इत्यादि की गणना कितनी है, यह कौन क्या कह सकता है ? उन अज्ञात तारा-सूर्यों तथा नक्षत्रों को तो जाने दो, हमारी पृथिवी से सम्बन्धित सौर-मण्डल ही का अभी पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सका है। सर ऑलीवर लॉज लिखते हैं—

"पृथिवी की अपेक्षा हमारा सूर्य दस-लाख गुणा बड़ा है और ऐसे-ऐसे अभी और तारा-सूर्य हैं जो हमारे सूर्य से भी दस लाख गुणा बड़े हैं।" ('मेकिंग ऑफ़ मैन' पृष्ठ १३७)

अब टुक विचार कीजिये और अनुमान लगाइये कि हमारा यह ब्रह्माण्ड और वे सारे ब्रह्माण्ड कितने बड़े होंगे ? अपने सौर मण्डल की थोड़ी-सी जानकारी ही आपको चकित कर देगी। सुनिये—

यदि तीन सौ मील प्रति घण्टे की गति से वायुयान द्वारा पृथिवी से

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चलें और इस वायुयान को आकाश-मार्ग में पैट्रोल इत्यादि मिलता चला जाय, तो किस नक्षत्र तक कितने समय में पहुँचना हो सकेगा, इसका कुछ अनुमान यह है—

चन्द्र—पृथिवी से २ लाख २१ हज़ार ६ सौ १० मील परे है। चांद तक तीस दिन में पहुंच सकेंगे।

शुक्र—२ करोड़ ३७ लाख १ हज़ार मील दूर है। वहाँ नौ वर्ष में पहुँचेंगे।

मंगल—३ करोड़ ३९ लाख १६ हज़ार मील परे है। वहाँ १२ वर्ष में पहुँचेंगे।

बुध—४ करोड़ ८० लाख २० हज़ार मील परे है। वहाँ १८ वर्ष में पहुँचेंगे।

सूर्य—९ करोड़ १४ लाख ६ हज़ार मील परे है। वहाँ ३५ वर्ष में पहुँचेंगे और यह सूर्य इतना बड़ा है कि जिस पृथिवी पर हम रहते हैं, ऐसी ३० लाख ५ हज़ार पृथिवियाँ इस एक सूर्य में समा सकती हैं।

बृहस्पति—३६ करोड़ ५८ हज़ार मील दूर है। वहाँ १३९ वर्षों में पहुँचेंगे।

वारुणि (यूरेनस)—१ अरब ६० करोड़ ६१ लाख ८३ हज़ार मील दूर है। वहाँ ६११ वर्ष में पहुँचेंगे।

वरुण (नेपच्यून)—२ अरब ६७ करोड़ ४६ लाख ५७ मील दूर है। वहाँ १ हज़ार ७७ वर्ष में पहुँचेंगे।

इसके अतिरिक्त ऐसे भी नक्षत्र हैं, जिनका प्रकाश दो अरब वर्षों से चला हुआ है और अभी तक पृथिवी तक पहुँच नहीं सका है। यह तो सिद्ध हो चुका है कि प्रकाश एक क्षण या एक सैकण्ड में १,८६,३२५ मील चलता है अर्थात् प्रकाश २४ घण्टों में १६ अरब ९ करोड़ ८४ लाख ८० हज़ार मील यात्रा करता है। इससे अनुमान कीजिए कि यह ऊपरवाला संसार कितना विशाल, कितना बड़ा और कितना विस्तृत है। यह सारा जगत् अपने-आप ही नहीं बन गया। इसका कोई निर्माता है। इस अथाह संसार का निर्माता स्वयं कितना शक्तिशाली, कितना महान् और कितना विचित्र होगा! यह सारा संसार उसी की महिमा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है, उसी का प्रकाश जगत् में विचित्र रूप से हो रहा है। इसके अनन्त रूप हैं। समस्त रूप उसके ही हैं।

एक तो उसके ये दर्शन हैं जो पवित्र भावना रखनेवाला हरेक आस्तिक कर सकता है। इन दर्शनों में कोई बाधा नहीं।

हर स्थान पर, हर वन-पर्वत में, हर मरुस्थल में, एकान्त अवस्था में, मौन होकर, अपने चारों ओर देखो। जिस नन्ही-सी कुटिया के बाहर मैं बैठा यह लिख रहा हूँ, उससे चार गज़ की ही दूरी पर गंगा बिना विश्राम किये बहती चली जा रही है। इसके पार ऊँचा पर्वत देवदारु के वृक्षों से हरा-भरा हो रहा है। पूर्व की ओर भी और पश्चिम की ओर भी पर्वत ही हैं। नन्ही-सी कुटिया के निकट पुष्प खिले हैं, मैंने वहसब-कुछ देखा। सहसा मैं पुकार उठा—"गंगा में भी तू, फूलों में भी तू, पर्वत और वृक्षों में भी तू, और जहाँ कुछ नहीं वहाँ भी तू, तू ही तू, तू ही तू! तू ही इस दीखनेवाले जगत् में विचित्र रूप से, अनन्त रूप से और समस्त रूप से प्रकट हो रहा है। मेरे में भी तो तू व्यापक है, आगे-पीछे, दायें-बायें और ऊपर-नीचे तू ही है। बाहर की आँख के साथ-साथ जब अन्दर की आँख भी खुल गई, तो फिर कोई स्थान तुझसे रिक्त न पाया।"

प्रभु के ये दर्शन प्रकृति से मिले हुए ब्रह्म के दर्शन हैं। यह प्रकृति की धूलि से लिप्त उसका एक पाद है। उसके शुद्ध रूप के दर्शन और हैं। भक्त उसके शुद्ध रूप ही को देखने का इच्छुक है; परन्तु शुद्ध रूप के दर्शन इन नेत्रों से नहीं हो सकते। इन नेत्रों की बात तो पृथक् रही, शुद्ध-बुद्ध तक न मन पहुँच सकता है न चित्त। वहाँ तक केवल आत्मा ही की पहुँच है। अतएव पहले उस आत्मा को जानने की आवश्यकता है जिसे परमात्मा तक जाने का अधिकार है।

□

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ओ३म् प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥
साम० उत्त० प्र० १, अ० २। खं० ६। मं० १॥

६. आत्मा की तलाश

बृहदारण्यकोपनिषद् में यह आदेश है—

आत्मानं चेद् विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥ १२ ॥
यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्माऽस्मिन्संदेह्ये गहने प्रविष्टः।
स विश्वकृत् स हि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः स उ लोक एव ॥
॥ १३ ॥
इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदीन्महती विनष्टिः।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवाभियन्ति ॥
बृह० ४। ४ १४ ॥

"पुरुष यदि अपने-आपको जान ले कि 'मैं यह हूँ' तो फिर वह क्या चाहता हुआ, किस कामना के लिए, शरीर के पीछे सन्तप्त हो ॥ १२ ॥ खतरेवाले इस घने जंगल (संसार) में प्रविष्ट हुआ, जिसका आत्मा (अपना-आप) ढूंढा गया है और जाग उठा है, वह कृतकृत्य है। उसने अपने सारे काम बना लिए हैं। दुनिया उसकी है। वह स्वयं भी एक दुनिया ही है ॥ १३ ॥ हम जब तक यहाँ हैं (जीवित हैं) तभी तक उसको जान सकते हैं; (और याद रखो) यदि यहाँ नहीं जाना तो बड़ा भारी विनाश है। जो उसको जान लेता है, वह अमृत हो जाता है और अन्य दुःख में डूबते हैं ॥ १४ ॥"

श्वेताश्वतर उपनिषद् में आत्मा का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते, तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥
श्वेताश्वतर १ । ६ ॥

"सबको जीवन देनेवाले और सबको आश्रय देनेवाले, उस बड़े ब्रह्म-चक्र में हंस (जीवात्मा) घुमाया जा रहा है। जब वह (देह से) पृथक् आत्मा को जान लेता है, तब उससे प्यार किया हुआ अमृतत्व को प्राप्त होता है।"

जो आत्मा परमात्मा को देखने का अधिकारी है, मनुष्य-देह में ही निवास करता है, वह है जो कि—

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता
मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ॥
प्रश्न० ४ । ६ ॥

"यह चैतन्य स्वभाव पुरुष (इस देह में) देखने, छूने, सुनने, सूँघने, रस लेने (चखने), मानने, जानने और करनेवाला है।"

पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा यह आत्मा द्रष्टा, श्रोता और रसयिता है और 'मन्ता, बोद्धा' यह अन्तःकरण द्वारा बनता है और कर्त्ता पाँच कर्मेन्द्रियों द्वारा कहलाता है। जानना यह है कि आत्मा यह शरीर नहीं है। शरीर तो नाशवान् है, पर आत्मा अमर है। वह नेत्र नहीं, नेत्र उसके लिए केवल अस्त्र हैं, ऐनक हैं। वह कान नहीं, वह कोई भी इन्द्रिय नहीं है; अपितु इससे पृथक् एक चैतन्य शक्ति है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये पाँच विषय हैं। इन पाँचों को जानने के लिए आत्मा के पास पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। शब्द सुनने के लिए कान, छूने के लिए त्वचा, रूप देखने के लिए नेत्र, रस चखने के लिए रसना और गन्ध सूँघने के लिए घ्राण है। बोलना, पकड़ना, घूमना, त्यागना और सन्तानोत्पादन—ये पाँच कर्म हैं। इन पाँचों से शरीर की स्थिति तथा जगत् का क्रम स्थिर है। ये वाणी, हाथ, पाँव, पायु (गुदा) तथा उपस्थ कर्मेन्द्रियाँ हैं। आत्मा के पास जो ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, उनके द्वार बाहर की ओर खुलते हैं। अतएव ये बाह्य विषयों ही को ग्रहण करती हैं। अन्दर जो व्यापार होता है, जो संकल्पों, वासनाओं और सुख-दुःख

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

की दुनिया रची जाती है, उसके लिए अन्दर की इन्द्रिय मन है।

परन्तु आत्मा इन ५ कर्मेन्द्रियों, ५ ज्ञानेन्द्रियों और मन से सर्वथा पृथक् है। शरीर के सारे अंगों और इन्द्रियों से पृथक् इस शक्ति को कैसे जानें? जो इन्द्रियाँ जीवात्मा को उसकी सहायता के लिए मिली हैं, ये ही जब बेकाबू हो जाती हैं तो उसके बन्धन और दुःख को बढ़ा देती हैं। इन इन्द्रियों तथा मन आदि की उच्छृङ्खलता के कारण आत्मा इतना दब जाता है कि मनुष्य इन्द्रियों को ही आत्मा समझने लगता है। आत्मा को पुनः प्रकाशित करने और इन्द्रियों के जाल से निकालकर आत्मा को अपने स्वरूप में स्थिर करने के लिए सबसे पहला प्रयत्न यही होना चाहिए कि निपुण रथसवार की भाँति इन्द्रियों को भली प्रकार वश में किया जाये। इन्द्रियों की चंचलता यात्री को कितना दुःखी कर देती है, इसका एक दृश्य ऋग्वेद में दिखाया गया है। अधीर होकर भक्त कहता है—

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये॥
ऋ० ६। ६। ६॥

"मेरे दोनों कान इधर-उधर भाग रहे हैं, आँखें भी इधर-उधर जा रही हैं। हृदय में जो यह (आत्मा) ज्योति है, बुझ-सी रही है। अत्यन्त दूर के विषय में लगकर मेरा मन दूर-दूर जा रहा है। मैं क्या कहूँ? और क्या चिन्तन करूँ?"

कितनी दयनीय दशा चंचल इन्द्रियों ने मनुष्य की कर दी है! कितनी विवशता और कितनी कातरता मन्त्र में प्रकट की गई है! सचमुच इन उपद्रवियों ने हृदय-प्रदेश में विद्रोह कर दिया है। इसलिए सबसे पूर्व इस चंचलता को दूर करना होगा और इससे पूर्व जो यम-नियम का वर्णन हो चुका है, वे दसों व्रत, यम और नियम, इस ध्येय की प्राप्ति में बड़े सहायक हैं। जब तक इन्द्रियों की चंचलता दूर होकर मन एकाग्र और स्थिर नहीं होता, तब तक आत्मा के दर्शन नहीं हो सकते।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यम-नियम को जीवन में धारण करने के पश्चात् फिर आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का अभ्यास करना चाहिए। आसन का प्रयोजन यह है कि सिद्ध-आसन, स्वस्तिक-आसन, सुख-आसन, पद्म-आसन, या जो भी आसन रुचिकर हो और जिससे कष्ट न हो, उसमें देर तक बिना हिले-जुले बैठना। इन्द्रियों की चंचलता दूर करने के लिए एक आसन में लगभग साढ़े तीन घण्टे बैठने का प्रयत्न तो होना ही चाहिए। आसन को निश्चल बनाने के लिए अनन्त आकाश और निश्चल भगवान् का ध्यान करना चाहिए। यह भावना रखनी चाहिए कि जैसे भगवान् निश्चल हैं, वैसे ही मैं निश्चल रहूँ। आसन के दृढ़ होने पर फिर श्वास-प्रश्वास को प्राणायाम द्वारा रोकना चाहिए। प्राणायाम और आसन का वर्णन मैं 'प्रभु-भक्ति' पुस्तक में कर चुका हूँ, इसलिए यहाँ उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। संक्षेप में इतना पर्याप्त है कि रेचक, पूरक, कुम्भक और स्तम्भवृत्ति, ये चार प्रकार के प्राणायाम, किसी अनुभवी गुरु से सीखकर प्रयोग करने चाहिएँ।

आसन और प्राणायाम के पश्चात् प्रत्याहार की बारी आती है। यह इन्द्रियों की चंचलता के नाश करने का सीधा और मुख्य साधन है। प्रत्याहार शब्द जिस धातु (हृ) से बना है उसका अर्थ है, 'पीछे हटना, समेटना'। जो-जो इन्द्रिय जिस-जिस विषय का प्रयोग करनेवाली है, उसको उस विषय से हटा देना, रोक लेना, उसे प्रयोग में न लाने देना प्रत्याहार है। इन्द्रियों को अपने विषयों से पीछे हटाकर चित्त के स्वरूप में स्थिर कर देना, प्रत्याहार कहलाता है। जब इन्द्रियों को उनके विषयों से निरन्तर रोका जाएगा और आप अपने इस अभ्यास में सफल हो जायेंगे, तो फिर इन्द्रियाँ पूर्णतया आपके वश में हो जायेंगी। मन-सहित इन्द्रियों के वश में हो जाने पर, अन्दर जो उथल-पुथल मची हुई थी, वह बन्द हो जायेगी। अब आत्मा को देखने की धारणा कीजिये और उस ज्योति-पुञ्ज आत्मा का ध्यान कीजिये। निस्सन्देह उस ज्योति के दर्शन आप पा लेंगे और आप कृतकृत्य होकर पुकार उठेंगे—"पा लिया!" जैसे तालाब के जल में जब तक पत्थर, कंकर, ढेले फेंके जाते रहेंगे, तब तक जल में तरंगें उठती रहेंगी और न सूर्य, न चन्द्र, न अपना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मुख उसमें देख सकेंगे; परन्तु जैसे ही पत्थर-कंकर आदि तालाब में फेंकने बन्द कर दें, थोड़ी देर प्रतीक्षा करें, जल को स्थिर होने दें, फिर देखें उसमें सूर्य भी, चन्द्र भी और अपना मुख भी; इसी प्रकार जब तक इन्द्रियाँ बाहर के पत्थर-कंकर अन्दर फेंकती रहेंगी, तब तक चित्त में उथल-पुथल मची रहेगी; ज्यों ही इन्द्रियों ने यह काम छोड़ा, अन्दर की जोत जग उठेगी। मन, चित्त, अहंकार, बुद्धि और सारी इन्द्रियों से निखरा हुआ एक ज्योति-स्वरूप आत्मा दिखाई देगा।

प्रत्याहार के अर्थ कहीं यह न ले लें कि इन्द्रियों को उनके विषयों से रोकने के लिए, इन्द्रियों का नाश ही कर दिया जाय, जैसे कि भक्त सूरदास ने किया था। एक सुन्दर युवती देवी को देखकर सूरदास पानी पीते-पीते आसक्त हो गया और देवी के पीछे-पीछे उसके घर जा पहुँचा। देवी ने पूछा, "क्या प्यास नहीं बुझी ?" सूरदास कहने लगा कि प्यास तो अधिक भड़क उठी है। तब देवी ने और जल पिला दिया। परन्तु सूरदास फिर भी उसी द्वार पर खड़ा था। देवी ने फिर पूछा, "अब मैं आपकी और क्या सेवा करूँ ?" तब सूरदास के मन में यह अद्भुत देवासुर-संग्राम हो रहा था। जब देवी ने 'और सेवा' पूछा तो सूरदास ने कहा, "देवी ! लोहे की दो सलाखें चाहिएँ।" देवी अन्दर गई और लोहे की दो सीकें लाकर उसके हाथ में दे दीं। सूरदास ने वहीं खड़े-खड़े दोनों आँखों की पुतलियाँ उन सीकों से फोड़ डालीं और कहने लगा—"इन्हीं दो ने मेरे हृदय में आग लगा रखी थी। इन्हीं को समाप्त किये देता हूँ।"

सूरदास का यह कृत्य बड़ी वीरता का है; परन्तु सूरदास ने न्याय नहीं किया। दोष आँखों का नहीं, मन का था। शिक्षा मन को मिलनी चाहिए थी, न कि आँखों को ! प्रत्याहार का यह अर्थ नहीं कि आँख-कान इत्यादि के मार्ग ही बन्द कर दो। अर्थ यह है कि मन को इस प्रकार का बना लो कि वह इन्द्रियों के द्वारा तुम्हारी अन्तरात्मा में आग न भड़का सके।

ये नेत्र तो माता को भी देखते हैं, पुत्री को भी, बहिन को भी, और धर्म-पत्नी को भी। भेद तो केवल मन की भावना में पड़ता है। तब नेत्र

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

को फोड़ देने का क्या लाभ ? आवश्यकता तो मन की भावनाओं को पवित्र बनाने की है। कठोपनिषद् में कहा है—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥ ६। १० ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥ ६। ११ ॥

"जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ खड़ी हो जाती हैं, और बुद्धि नहीं डोलती है, उसको कहते हैं सबसे ऊँची अवस्था ॥ १० ॥ वह जो इन्द्रियों की निश्चल धारणा है, इसी को योग मानते हैं। उस समय वह (योगी) प्रभाव से रहित होता है ॥ ११ ॥

यह ऊँची अवस्था प्राप्त करने के लिए मन को अपना साथी बनाकर आगे बढ़ना होगा और आत्म-दर्शन पाने होंगे। अष्टांग योग की साधना के जो संकेत पूर्व किये जा चुके हैं, उनकी आधारशिला शरीर का और इन्द्रियों का आहार है। जिस प्रकार के आहार का आप सेवन करेंगे, उसी प्रकार की सफलता या असफलता भी होगी। छान्दोग्योपनिषद् में कहा है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥ ७ ॥ २३ । २ ॥

"आहार के शुद्ध होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तः-करण के शुद्ध होने पर स्मृति दृढ़ हो जाती है और स्मृति प्राप्त होने पर हृदय की समस्त गाँठें खुल जाती हैं।"

आहार का अर्थ केवल अन्न नहीं, अपितु आहार का यह भाव है कि शरीर तथा सारी इन्द्रियों और मन इत्यादि के जितने प्रकार के आहार हैं, वे सब-के-सब शुद्ध हों। यह ठीक है कि नेक कमाई का अन्न मन को निर्मल बनाता है; परन्तु यदि आँख का, नाक का, कान का और दूसरी इन्द्रियों का आहार शुद्ध नहीं होगा, तो भारी विघ्न पड़ जायेगा। इस-लिए सर्वप्रकार के आहार पवित्र होने चाहिएँ। तब यह अन्तःकरण भी पवित्र होने लगेगा। इस दर्पण पर जो मैल जन्म-जन्मान्तर से जम चुकी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है, वह उतरने लगेगी और पूरे अभ्यास से यह शीशा चमक उठेगा। ऐसा होने पर भूत और भविष्यत् का सत्य ज्ञान होने लगेगा। तब हृदय की ग्रन्थियाँ खुल जायेंगी। ये ग्रन्थियाँ खुलते ही आत्मदर्शन होने लगेंगे, तब मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक बृहद् ज्योति प्रकट हो जायेगी, जो हृदय-देश में हरेक तत्त्व के दर्शन करा देगी। इस ज्योति के दर्शन से एक अद्भुत आनन्द प्राप्त होगा।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥
ऋ० १० । ५३ । ८ ॥

७. महाकठिन मार्ग

"बहुत ही कठिन मार्ग है यह तो। इस पर चलना दुष्कर है। कितनी मंज़िलें आपने बतला दीं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि और इनकी आधारशिला आहार का पवित्र होना। नहीं महाराज! इस कठिन मार्ग पर नहीं चला जायेगा।" ऐसी कुछ आवाज़-सी आ रही है। यह सत्य है कि मार्ग कुछ कठिन है, परन्तु परिणाम भी तो बहुत प्यारा है; मनुष्य-जीवन का उद्देश्य पूर्ण करनेवाला है। कभी रेलवे स्टेशन पर देखी है—भूसे की तरह स्त्री, पुरुषों, बच्चों से भरी हुई रेलगाड़ी? उसके खड़े होते ही यात्री उस पर चढ़ने के लिए दौड़े। वहाँ तो पहले ही स्थान नहीं। ये सहस्रों यात्री इसमें कैसे स्थान पा सकेंगे? परन्तु धक्का-पेल हो रही है। किसी की पगड़ी गिर पड़ी। किसी की टोपी उतर गई। कोई घायल हो गया। किसी का पसीना बहने लगा। यह अवस्था देखकर मैंने कहा—"अरे क्यों मरे जा रहे हो मूर्खो! यह देखो, परे यार्ड में कितनी ही गाड़ियाँ खाली पड़ी हैं। उनमें सवार क्यों नहीं हो जाते?" यात्रियों ने कहा—"वे गाड़ियाँ तो यहीं खड़ी होंगी; यही गाड़ी हमें हमारे ठिकानों पर पहुँचा देगी।"

तो इसलिए ये सब कष्ट सहन किये जा रहे हैं, ताकि अपने लक्ष्य पर पहुँच जायँ। जब छोटी-सी यात्रा के लिए इतने कष्ट सहन किये जाते हैं, तो जीवन-यात्रा के लिए कठिन मार्ग देखकर आप यहीं बैठे रहेंगे? रेलगाड़ियाँ तो आती ही रहती हैं। यह मनुष्य-जन्म की गाड़ी पता नहीं फिर आयेगी या नहीं। यदि मनुष्य-जीवन की यह गाड़ी ऐसे

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ही चल दी और हम इस पर सवार न हो सके तो फिर कौन कहे, कब तक, कितने वर्ष, कितनी शताब्दियाँ, कितने युग प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। स्वामी मंगलनाथ जी एक बात सुनाया करते थे कि जिस प्रकार कुएँ से जल लाने के लिए डोरी-लोटा उस कुएँ में डालते हैं। सारी डोरी कुएँ में डाल दी जाती है और थोड़ी-सी, कोई हाथ-भर डोरी पानी निकालनेवाले के हाथ में रह जाती है। यदि वह एक हाथ से छूट जाय तो पानी मिलना तो एक ओर रहा, डोरी-लोटे से भी हाथ धोने पड़ते हैं। परन्तु यदि डोरी दृढ़ता से पकड़े रखें, तो जल भी मिल जाता है, डोरी-लोटा भी। इसी प्रकार इस मनुष्य ने अनेक जन्म व्यर्थ संसार-कूप में खो दिये हैं। केवल यह मनुष्य-देह इसके वश में है। यदि यह देह भी बिना मोक्ष-जल प्राप्त किये हाथ से निकल गया, तो फिर प्यासा ही रहना पड़ेगा। क्या केवल इसलिए कि आत्म-दर्शन का मार्ग कठिन है, यात्री उस पर नहीं चलेगा? यदि हर कठिन मार्ग या साधन को त्यागना ही है, तो फिर यह धन कमाना, ये सारे वैभव एकत्र करना, ये अनेक प्रपंचों की दुनियाएँ रचना और दूसरी बातें करना, कौन-सा सुगम है? एक धन को ही देख लीजिये। इसके सम्बन्ध में भागवत के ये श्लोक बहुत शिक्षाप्रद हैं—

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥ १७॥

स्तेयः हिंसाऽनृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥ १८॥

एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥ १९॥

भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा।
एका स्निग्धा काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः॥ २०॥

अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्॥ २१॥
भाग० ११। २३॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"मनुष्यों को धन के कमाने में, कमाकर उसकी रक्षा करने, बढ़ाने तथा व्यय करने में तथा उसके नाश और उपभोग में, सर्वत्र परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रम का ही सामना करना पड़ता है। चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, विस्मय, घमण्ड, मतभेद-बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जुआ और शराब, ये पन्द्रह अनर्थ अर्थ (धन) के कारण ही होते हैं, ऐसा माना गया है। इसलिए कल्याण चाहनेवाले पुरुष को उचित है कि वह स्वार्थ तथा परमार्थ के विरोधी इस अर्थ-नामधारी अनर्थ को दूर से त्याग दे। भाई-बन्धु, स्त्री, पुत्र, माता-पिता, और सगे-सम्बन्धी, जो स्नेह के कारण सदा एकमेव बने रहते हैं, कौड़ी के कारण इतने पराये हो जाते हैं कि एक-दूसरे के वैरी बन जाते हैं। थोड़े-से धन के लिए ही इन सबका क्षोभ भड़क उठता है। बात की बात में सारा स्नेह-सम्बन्ध भूलकर ये लड़ने-झगड़ने लगते हैं; और एक-दूसरे के प्राण लेनेवाले बन जाते हैं।"

पहले तो धन प्राप्त करने ही में कितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं और ईमानदारी से पसीना बहाकर वा झूठ, धोखा और दूसरे अपराध करके यदि अर्थ मिल भी गया, तो देख लीजिये, इसके क्या परिणाम होते हैं। आप कहेंगे कि क्या फिर धन नहीं कमाना चाहिए? इसका उत्तर यह है कि धन कमाने से न वेद रोकता है, न शास्त्र; परन्तु कष्ट तो इसमें भी सहन करना ही पड़ेगा। मानव-जीवन में धन एक आवश्यक वस्तु है। इसके बिना कोई भी कार्य चलता नहीं है। परन्तु इस धन से जहाँ अच्छे कार्य होते हैं, वहाँ सद्भावना न होने से यह अर्थ अनर्थकारी भी है। फिर भी जनता इसके लिए मारी-मारी फिरती है। धन-उपार्जन के लिए कौन-सा दुःख है, जो सहन नहीं किया जाता? और फल क्या मिलता है? एक कवि ने धन के सम्बन्ध में यथार्थ बात कही है—

कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, यह पाये बौराय॥

"कनक (धतूरे) से कनक (स्वर्ण-धन) में सौ गुणा अधिक मादकता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

(नशा) है। धतूरे को मनुष्य खाता है, तब पागल होता है; परन्तु धन के तो पाते ही पागल हो जाता है।"

कहते हैं कि पहले यह कहावत प्रसिद्ध थी कि जिसकी कमर से एक हज़ार रुपया बँधा हो, उसे एक बोतल शराब का नशा चढ़ा होता है।

जिस मार्ग का यहाँ निर्देश किया गया है और जिसे कठिन बतलाया जा रहा है, उस पर चलते हुए जिस मंज़िल पर पहुँचते हैं, वहाँ तो आनन्द ही आनन्द हैं। वहाँ न शोक है, न मोह। न झूठ है, न दम्भ। न अकड़ है, न अभिमान। वहाँ तो मोद-प्रमोद तथा खुशियों ही का सदा नृत्य होता है। वहाँ पहुँचकर पछतावा नहीं, सन्तोष होता है। अशान्ति नहीं, शान्ति प्राप्त होती है।

मनुष्य-जीवन में दो ही विशेषताएँ हैं—एक तो अपने विचारों को प्रकट करने की शक्ति और दूसरे आत्म-दर्शन करने का अधिकार। पहली विशेषता तो संसारी लोगों ने झूठ बोलकर तथा वाणी का दुरुपयोग करके खो दी और दूसरी विशेषता को 'यह मार्ग कठिन है' कहकर भुला दिया। तब यह मनुष्य-जीवन हुआ या पशु-जीवन ? ईंटों के भट्टे के गधे की तरह कच्ची ईंटें लाते जाओ और पक्की नगर में पहुंचाते चले जाओ। न कच्ची ईंटें समाप्त होंगी न पक्की; बस, ढोते ही रहो। दिन के पश्चात् रात, रात के पश्चात् दिन। जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म। इसी हेराफेरी में पड़े रहोगे क्या ? क्या आपको ऐसी अवस्था पसन्द है ? कितना दयनीय और विवशता का चित्र एक पंजाबी कवि ने ऐसे संसारी का खींचा है—

आवे दिआ खोतिआ, ते आवे हेठ खलोतिआ।
कच्चियाँ ले आवेंगा, ते पक्कियाँ ले जावेंगा।
आवे नहीं ओ मुकणा, ते तू नहीं ओ छुटणा।

"ईंटों के भट्टे के नीचे खड़े हुए गधे ! तू कच्ची ईंटें लाता जायेगा और पक्की ले-जाता रहेगा। इस प्रकार भट्टा समाप्त नहीं होगा और तेरा छुटकारा भी नहीं होगा।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सांख्यदर्शन के चौथे अध्याय का यह सूत्र सांसारिक भोगों में लिप्त मनुष्य की आँखें खोलनेवाला है—

न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ।। २७ ।।

"भोगों के भोगने से राग की शान्ति नहीं होती, मुनि की तरह ।"

सौभ्री एक मुनि (ऋषि) थे। उनकी प्रकृति संसारी भोग भोगने में लग गई। जीवन-भर अपने मनोरथ पूरे करने में लगे रहे। परन्तु राग की आग भोगों की समिधाएँ डालने से शान्त नहीं हुई और भड़कती ही रही। अन्त में सौभ्री ऋषि की मृत्यु का समय आ गया। तब उसने अपने सारे सम्बन्धियों और मित्रों को बुलाया और उनसे कहने लगा—

आमृत्युतो नास्ति मनोरथानामन्तो हि विज्ञातमिदं मयाद्य ।
मनोरथासक्तिपरस्य चित्तं न जायते वै परमार्थसङ्गी ।।

"सुनो ! मनोरथों का अन्त मृत्यु-पर्यन्त नहीं होता, यह मुझे आज मृत्यु के समय ज्ञात हुआ है। मनोरथों में जो आसक्ति है, उस आसक्ति में जो चित्त है, वह आत्म-ज्ञान के प्राप्त करने का साधन नहीं बनता।"

यह सौभ्री मुनि का जीवन-भर का अनुभव है। क्या इससे हम शिक्षा नहीं ले सकते ?

विषयों की पिपासा को आज तक कोई शान्त नहीं कर सका। इन्हें एकत्र करने ही में जीवन व्यतीत हो जाता है और फिर नये जीवन में मज़दूरी प्रारम्भ हो जाती है। कितने जीवन बीत गए तालाब खोदते-खोदते, क्या प्यास बुझानेवाले जल की एक भी बूंद प्राप्त हो सकी है ?

तुलसीदास कब तृषा जाये।
सर खनत हि जन्म सिरान्यो ।।

विषयों के जिस तालाब को खोदा जा रहा है, यहाँ से तृषा मिटानेवाला जल मिलने का नहीं।

अनित्य वस्तुओं को नित्य समझकर, उन्हीं के पीछे हीरे-जैसा जन्म कौड़ी के बदले खोनेवाले लोग भारी भ्रम में उलझ रहे हैं। वे

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

भूल जाते हैं कि रावण ने सोने की लंका बनाई थी। कंस सबका प्रभु बन बैठा था। हिटलर ने सारी दुनिया को चुनौती दी थी। वे सब कहाँ हैं? उससे बढ़कर क्या धन-सम्पत्ति, राज्य और वैभव जमा कर सकोगे? यदि कर लोगे तो फिर भी परिणाम वही होगा, जो इनका हुआ। जो लोग इतने ऊँचे नहीं उठ सकते, वे एक साधारण गृहस्थी की तरह जीवन व्यतीत करते हुए सम्बन्धियों ही के मोह में पड़े रहते हैं। यदि आत्म-चिन्तन ही न किया, तो ये सम्बन्धी क्या वहाँ काम आयेंगे जहाँ कोई भी सहायक पहुंच नहीं सकता? मनु भगवान् ने कहा है—

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥

मनु० ४। २३९॥

"वहाँ (परलोक में) न माता, न पिता, न पुत्र, न स्त्री, और न सम्बन्धी सहायता कर सकते हैं, किन्तु एक धर्म ही वहाँ सहायता में खड़ा होता है।"

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थप्रकाश' में मनु भगवान् के आदेशों का स्मरण करते हुए लिखा है—

"जब कोई किसी का सम्बन्धी मर जाता है, उसको मिट्टी के ढेले के समान भूमि में छोड़कर पीठ दे, बन्धुवर्ग विमुख होकर चले आते हैं, कोई उसके साथ जानेवाला नहीं होता; किन्तु एक धर्म ही उसका संगी होता है।"

अब जो लोग दुनियादारी ही में पड़े रहकर, मनुष्य-जीवन व्यतीत कर देते हैं, उनको अपने मन में विचार करना होगा कि संसार में किसलिए आए थे और क्या कर रहे हैं? फिर यह भी देखना चाहिए कि अनित्य वस्तुओं, अनित्य सम्बन्धियों के पीछे मोह-ममता में फँसकर अपने चित्त और मन को दुःखी किये रखना और उन्हीं में आसक्त होकर अपने नित्य प्रियतम को भुलाये रखना कहाँ की बुद्धिमत्ता है?

महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णन आता है कि भयंकर युद्ध में पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेने के पश्चात् युधिष्ठिर जी प्रसन्न नहीं हुए; मरे

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हुए सम्बन्धियों के वियोग में दुःखी होने लगे। भाइयों ने बहुत समझाया और विद्वानों ने भी; परन्तु मोह की ज़ंजीर बुरी तरह जकड़ी है। युधिष्ठिर पूर्ववत् अधीर हो रहे। तब संसारी सम्बन्धियों की वास्तविक कथा उन्हें सुनाई गई। इस कथन के ये श्लोक बड़े मार्मिक हैं—

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥ ३६॥
ये . चैव पुरुषाः स्त्रीभिर्गीतिवाद्यैरुपस्थिताः।
ये चानाथाः परान्नादाः कालस्तेषु समक्रियः॥ ३७॥
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्॥ ३८॥
नैवास्य कश्चिद् भवति नायं भवति कस्यचित्।
पथि सङ्गतमेवेदं दारबन्धुसुहृज्जनैः॥ ३९॥

"जैसे महासागर में काष्ठ के दो टुकड़े दो ओर से आकर एक स्थान में मिल जाते हैं, और समय के अनुसार फिर अलग-अलग हो जाते हैं, वैसे ही प्राणियों का भी समय के अनुसार संयोग-वियोग होता रहता है। जो पुरुष उत्तम स्त्रियों के बीच रहकर गीत, वाद्य आदि के सुखों को भोगते रहते हैं और जो पराये अन्न के आसरे जीवन धारण करनेवाले अनाथ पुरुष हैं, काल दोनों के संग समान व्यवहार करता रहता है अर्थात् वे कोई भी मृत्यु के दुःख से छुटकारा नहीं पा सकते। इस संसार में माता, पिता, स्त्री और पुत्र आदि सैकड़ों तथा सहस्रों भाँति-भाँति के सम्बन्ध दीख पड़ते हैं, परन्तु विचारपूर्वक देखने से ये लोग किसके माता-पिता हैं और हम लोग हो किसके आत्मीय बान्धव हैं, यह स्पष्ट हो जाता है। कोई भी इस आत्मा का आत्मीय नहीं है और न यह आत्मा किसी का आत्मीय बन्धु हो सकता है। जैसे पथिक मार्ग में गमन करते हुए, थोड़े समय के वास्ते एक स्थान पर इकट्ठे विश्राम करके फिर यथायोग्य स्थान पर गमन करते हैं, इस संसार में स्त्री, पुत्र और स्वजनों की संगति भी उसी भाँति समझनी चाहिए।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जब याज्ञवल्क्य संन्यास-आश्रम में जाने लगे, तो उस समय जो भारतीय जोत जगानेवाली बातचीत मैत्रेयी से हुई है उससे तो सांसारिक रिश्ते और आत्मा का सम्बन्ध पूरा-पूरा स्पष्ट हो जाता है। उपनिषद् में वह कथा इस प्रकार है—

याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। उनमें से मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी और कात्यायनी गृहाश्रम के कार्यों में कुशल। याज्ञवल्क्य जब जीवन की दूसरी अवस्था को आरम्भ करने के लिए तैयार हुए, संन्यास लेने लगे तो उन्होंने कहा—"प्रिये मैत्रेयी! मैं इस आश्रम से अब संन्यास में जा रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि अपनी सम्पत्ति तुम दोनों को बाँट दूँ।"

मैत्रेयी ने कहा—"हे भगवन्! यदि यह सारी पृथिवी धन से भरी हुई मेरे पास हो, तो क्या मैं इससे अमर हो जाऊँगी?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर में कहा—"नहीं प्रिये! जैसे अमीर लोगों का जीवन होता है वैसे ही तेरा जीवन होगा; परन्तु धन से अमरत्व (अमर होने) की कोई आशा नहीं है।"

मैत्रेयी ने तब फिर कहा—"जब इस धन से मैं अमर नहीं हो सकूँगी तो इसे लेकर मैं क्या करूँगी? केवल वह वस्तु, जो आप जानते हैं, वही मुझे बतलाइए।"

याज्ञवल्क्य ने कहा—"तुम तो हमारी पहले ही प्यारी हो। अब यह बात पूछने से तो तुमने प्रीति को और भी बढ़ा दिया है। अहो आदरणीय! मैं तेरे लिए इस रहस्य को खोलूँगा, ध्यान से सुनो!"

मैत्रेयी—"जी, आपकी अनुकम्पा!"

तब याज्ञवल्क्य ने कहा—

"हे मैत्रेयी! पति, पति की कामना के लिए प्यारा नहीं होता है, किन्तु पति आत्मा के लिए प्यारा होता है। इसी प्रकार हे मैत्रेयी! पत्नी, पत्नी की कामना के लिए प्यारी नहीं होती, किन्तु पत्नी आत्मा की कामना के लिए प्यारी होती है। ऐसे ही पुत्र, पुत्रों की कामना के लिए प्यारे नहीं होते, किन्तु पुत्र आत्मा की कामना के लिए प्यारे होते हैं। हे मैत्रेयी! धन, धन की कामना के लिए प्यारे नहीं होते,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अपितु धन आत्मा की कामना के लिए प्यारे होते हैं। ऐसे ही पशु, ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, पृथिवी आदि लोक, अग्नि आदि देवता भी इनकी कामना के लिए प्यारे नहीं होते, किन्तु ये सब आत्मा की कामना के लिए ही प्रिय होते हैं। हे मैत्रेयी! कोई वस्तु हो, वह सब उसके लिए प्यारी नहीं होती, किन्तु हरेक वस्तु आत्मा के लिए ही प्यारी होती है।"

निस्सन्देह आत्मा सबको साक्षात् प्यारा है और इस संसार में जो कुछ हमें प्यारा लगता है, वह केवल इसलिए कि वह हमारे आत्मा के अनुकूल है। सर्दियों में धूप-आग कितनी भली प्रतीत होती हैं! गर्मियों में दोनों काटने को दौड़ती हैं। क्यों? केवल इसलिए कि सर्दियों में धूप और अग्नि आत्मा के अनुकूल होती हैं। हम इनके सेवन के लिए स्वयं इनके निकट जाते हैं। परन्तु गर्मियों में ये आत्मा के प्रतिकूल हो जाती हैं और हम इनसे दूर भागते हैं। यही बात शेष सब पदार्थों के लिए है। पति हो या पत्नी, पुत्र हो या पिता, लोक-सेवा हो या परिवार-सेवा, राजनीति हो या धर्म-सभा, जो कोई हो या जो कुछ हो, सब इसलिए प्यारा है कि वह आत्मा की प्रीति का कारण है। हाँ, आत्मा सदा-सर्वदा प्यारा है।

परन्तु इस संसार में यह क्या हो रहा है? जिस आत्मा के लिए सारी वस्तुएँ प्यारी हैं, उसी आत्मा को मनुष्य भूल बैठा है। बारात तो जा रही है और दूल्हे का पता ही नहीं। इससे बड़ा आश्चर्य कभी देखा है? इसी आत्मा की खोज और दर्शन के लिए जब शास्त्र मार्ग बतलाता है, तो उसे महाकठिन कह दिया जाता है। क्षणभंगुर और अनित्य वस्तुओं के पीछे तो दुनियावाले पागल-से हो रहे हैं। थोड़े-से काल के लिए जिनका नाम है, उनके लिए तो पत्थर तुड़वा लो, पहाड़ कटवा लो, समुद्र में गोते लगवा लो, दिनभर धूप में खड़ा करवा लो, मूसलाधार वर्षा में मीलों चलवा लो, रात-रातभर जगवा लो, झूठ बुलवा लो, सब प्रकार के अत्याचार, भ्रष्टाचार करवा लो। दुनिया-वाले यह सब-कुछ करते हैं और करते रहेंगे। परन्तु जो आत्मा सदा से है और सदा रहेगा, जो ऐसा साथी है जो कभी धोखा नहीं देता,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उसकी ओर झुकने के लिए दुनियावालों के पास समय नहीं, उत्साह नहीं, इच्छा नहीं।

कठोपनिषद् में नचिकेता के अन्तिम प्रश्न का उत्तर देकर यम ने संसारी लोगों के कल्याण के लिए घोषणा की कि—

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते॥

"यदि शरीर का पतन होने से पहले-पहले इस मनुष्य-शरीर में ही (भक्त) परमात्मा का साक्षात् कर सका (तब तो ठीक है); नहीं तो फिर वह अनेकों कल्पों तक, नाना लोकों और योनियों में शरीर धारण करने को विवश होता है।"

याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से भी यही कहा कि—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

"सचमुच, हे मैत्रेयी! आत्मा ही है, जो दर्शन करने योग्य है, मनन करने योग्य है और निदिध्यासन करने (ध्यान देने) के योग्य है।"

संसार में यदि कोई दर्शन के योग्य वस्तु है, तो वह केवल आत्मा है। यह निश्चित बात कहकर साथ ही यह भी बतला दिया है कि आत्मा के दर्शन के उपाय क्या हैं। याज्ञवल्क्य ने ये तीन उपाय बताये हैं—(१) श्रवण, (२) मनन, और (३) निदिध्यासन।

श्रवण

ब्रह्मविद्या को क्रियात्मक रूप से जाननेवाले किसी विद्वान् गुरु से या किसी मोक्ष-शास्त्र से उपदेश लेना 'श्रवण' कहलाता है। सच्चे गुरु के बिना और सत्य-शास्त्र के बिना सन्मार्ग का मिलना कठिन है। कठोपनिषद् में कहा है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत!

"उठो, जागो! चुने हुए आचार्यों के पास जाओ और समझो!"

यही कारण है कि आर्य-हिन्दुओं में यह कहा जाता है कि "गुरु बिना गति नहीं।" इसीलिए गुरु धारण करने की प्रथा अब तक चली आती है; परन्तु जिस प्रकार संसार के दूसरे क्षेत्रों में त्रुटियाँ आ गई

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हैं, इस क्षेत्र में भी ढोंग अधिक हो गया है। अतएव बड़ी सावधानी से गुरु को चुनना चाहिए। सच्चे अनुभवी और पहुँचे हुए गुरुओं का अभाव नहीं है। ऐसे महानुभावों के पास पहुँचकर सबसे पहला प्रभाव यह होता है कि हृदय को शान्ति-सी मिलने लगती है। ऐसे ही गुरु आत्मा के दर्शन का मार्ग बतला सकते हैं। जिसने यह मार्ग स्वयं नहीं देखा, वह दूसरों को कैसे मार्ग दिखला सकता है?

पानी मिले न आपको, औरों बख्शत खीर।
आपन मत निश्चल नहीं, और बँधावत धीर॥

जो स्वयं दर्शन पा चुके हैं, जिन्होंने अपना जीवन सफल बना लिया है, जो काम-क्रोध आदि पर विजय प्राप्त करके आत्मा के निकटवासी बन चुके हैं, उनकी तलाश तो कबीर भी करते रहे। ऐसे ही साधुओं और गुरुओं के सम्बन्ध में कबीर कहते हैं—

सुख देवें, दुख को हरें, दूर करें अपराध।
कहें कबीर ये कब मिलें, परम सनेही साध॥

मनन

सत्य गुरु को पाकर, उनसे आत्म-दर्शन का मार्ग जानकर अब साधक को स्वयं प्रयत्न और पुरुषार्थ करना होता है। जो उपदेश लिया है, उस पर दत्तचित्त होकर मनन करना, उसे युक्तियों से परखना और अनुभव से जानना, मनन कहलाता है।

निदिध्यासन

निरन्तर उसी पर ध्यान जमाना, उसी का चलते-फिरते, उठते-बैठते-जागते अपितु सोते भी ध्यान रखना, इसे निदिध्यासन कहते हैं। जब निरन्तर एक ही ध्येय पर ध्यान लगाया जाएगा तो उसका साक्षात्-कार हो जाएगा। बस, इससे परे और क्या है?

कठोपनिषद् का ऋषि कहता है—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"इंद्रियों के परे (सूक्ष्म) अर्थ (सूक्ष्म-तन्मात्र—शब्द-तन्मात्र, स्पर्श-तन्मात्र, रूप-तन्मात्र, रस-तन्मात्र व गन्ध-तन्मात्र) है।"

कठ० ६। ७॥

अर्थों से परे मन है।
मन से परे बुद्धि है।
बुद्धि से परे महान् आत्मा (महत्तत्त्व) है।
महत् से परे अव्यक्त (प्रकृति) है।
प्रकृति से परे पुरुष (परमात्मा) है।
पुरुष से परे कुछ नहीं है।

बस, यह सीमा (पराकाष्ठा) है। इसलिए कहा जाता है कि आत्मा को जान लेने पर फिर कुछ जानने-योग्य नहीं रहता।

दोनों का विवेक

आत्मा के जानने तक ही अधिक परिश्रम है। प्रकृति या माया के साथ मिला हुआ आत्मा, माया से पृथक् कर जान लेना ही कठिन है। परन्तु अब यह जान लिया कि मैं शरीर नहीं, मैं इन्द्रियों में से भी नहीं, मैं मन, बुद्धि और चित्त भी नहीं, अपितु इनसे निखरी हुई शुद्ध चैतन्य सत्ता हूँ, जो सदा से है और सदा रहेगी; मेरे घर बदल सकते हैं और बदलते हैं, परन्तु मुझमें परिवर्तन नहीं आता। शरीर शिशु होता है। बाल्यकाल में से गुज़रता है। युवावस्था में आता है। फिर मुख पर झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं। दस वर्ष के पश्चात् देखनेवाला पहचानता नहीं। दाँत निकल गये। बाल श्वेत हो गये। खाल ढीली पड़ गई। आँखें अन्दर धँस गईं। टाँगें लड़खड़ाने लगीं। चेहरे की लालिमा अस्त होते सूर्य की भाँति न जाने कहाँ चली गई। लोग कहने लगे, यह बूढ़ा हो गया है। तब एक दिन यह देह निष्प्राण हो गई। सम्बन्धियों ने उठाया और उसे भस्म कर आये। आँधी उठी और उसने भस्म को उड़ा दिया। लोग कहने लगे, अब यह समाप्त हो गया। परन्तु सुनो, मैं मरा नहीं। नाशवान् शरीर ही मरा है। मैं तो उसी प्रकार से विद्यमान हूँ। मैंने एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण कर लिया

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। मुझे फिर नेत्र, श्रोत्र, नाक इत्यादि सारी इन्द्रियाँ मिल गई हैं। पूर्ववत् बाल, युवा, वृद्ध होनेवाले शरीर के अन्दर विराजमान हूँ। देह जड़ था और जड़ है, पर मैं इसमें एक चेतन सत्ता हूँ। जब तक मैं देह में हूँ, तभी तक देह भी चेतन प्रतीत होता है। ज्यों ही मैंने इसे छोड़ा, यह काष्ठवत् और लोष्ठवत् पड़ा है। वायु अब भी अप्रत्यक्ष रूप में इसके अन्दर-बाहर है। इन्द्रियाँ भी हैं, परन्तु चेतन सत्ता निकल जाने से यह देह न सुन सकता है, न देख सकता है, न बोल सकता है। बस, इसी 'मैं यह हूँ' को जान लेना है; देह परिवर्तनशील है, परन्तु चेतन सत्ता=आत्मा नहीं बदलता।

याज्ञवल्क्य तथा जनक की वार्ता आत्म-दर्शन के सम्बन्ध में चल रही थी। तब जनक ने प्रश्न किया—

कतम आत्मा इति ?

"वह आत्मा इस देह में कौन-सा है ?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः।

बृ० ४।३।७॥

"यह जो विज्ञान-स्वरूप, इन्द्रियों से घिरा हुआ, हृदय के अन्दर ज्योतिपुरुष है।"

यह आत्मा है। याज्ञवल्क्य फिर कहते हैं, "जैसे नमक का एक ढेला हो, न उसके कुछ अन्दर है न बाहर; किन्तु सारे-का-सारा वह एक रस का ही ढेला है। इसी प्रकार यह जो आत्मा है न, इसके न कुछ अन्दर है न बाहर है; किन्तु यह सारे-का-सारा एक चेतनता का ही पुञ्ज है, जो इन भूतों (प्राणधारियों) से प्रकट होकर इन्हीं में गुम हो जाता है।" जैसे नाटक में पर्दे के पीछे से नट (ऐक्टर) आकर और अपना खेल दिखाकर फिर पर्दे के पीछे चला जाता है, इसी प्रकार आत्मा फिर पर्दे की ओट में हो जाता है।

ये जितने रूप बदलते हैं, सब माया या प्रकृति के रूप हैं। परिणाम या परिवर्तन केवल प्रकृति में होता है। आत्मा और परमात्मा कभी नहीं बदलते। इस रहस्य को वेद ने भी और उपनिषदों ने भी, स्पष्ट

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रूप में बताया है। योगी महानुभाव तो जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति को अलग-अलग साक्षात् देखते हैं। साधक के लिए यह समझना आवश्यक है कि प्रकृति भोग्य है, जीवात्मा भोक्ता है। प्रकृति जीवात्मा के लिए नाना रूप धारण करती है; आत्मा के भोग का भी और अपवर्ग का भी प्रबन्ध करती है। आत्मा उन भोगों को भोगता भी है और मोक्ष की भी तैयारी करता है। जितनी सृष्टि है और सृष्टि में जो कुछ है, यह प्रकृति और आत्मा के संयोग ही से है। आत्मा इन दोनों के इस खेल को देख रहा है। प्रकृति को भगवान् ने एक नियम के अन्दर रखा हुआ है। प्रकृति की मजाल नहीं कि उन नियमों का उल्लंघन कर सके। भगवान् ने प्रकृति को यही आज्ञा दे रखी है कि वह जीवात्मा के कल्याण के लिए सदा दासियों की भाँति खड़ी रहे। परन्तु जिन नियमों में उसे रखा गया है, उन्हीं में रहकर सेवा करे। जीवात्मा को परमात्मा ने वेदादेश देकर पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है कि जो समय जीव को परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए दिया गया है, इसका वह सदुपयोग करे। यदि जीव ने प्रकृति के लुभायमान जालों में फँसना स्वीकार न किया, तो यह परमात्मा को सर्व-सौन्दर्यों का भण्डार मानकर उसी की ओर झुक जाता है, आनन्द की हिलोरें लेता है, और यदि माया के जाल में फँस गया, तो फिर प्रकृति ऐसी जकड़ती है कि इसे सर्वथा विवश बना देती है। इस विवशता (पराधीनता) से निकलना और माया से अलग अपनी चेतन सत्ता का पूर्ण विश्वास ही आत्म-दर्शन है। इसी का विवेक करना है।

आत्म-दर्शन तक ही कठिनाई है। यह जप, तप, अभ्यास आदि इसीलिए हैं। जब आत्म-दर्शन पा लिये तो फिर प्रभु-दर्शन में अधिक देर नहीं लगती। तब केवल प्रभु की कृपा ही की प्रतीक्षा शेष रह जाती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ओ३म् उत स्वया तन्वा सं वदे तत्,
कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत,
कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥
ऋ० ७ । ८६ । २ ॥

८. प्रभु-दर्शन

आत्मा और परमात्मा में इतना ही भेद है कि आत्मा केवल एक शरीर में निवास करता है और परमात्मा सारे जगत् में रमा हुआ है। वह जगत् के बाहर भी है। जैसे आत्मा शरीर का काम चलाता है, वैसे परमात्मा सारे संसार का काम चलाते हैं। मनुष्य का शरीर छोटा है, अल्प है, सीमित है; इसलिए जीवात्मा दुःखी होता है क्योंकि आनन्द अल्प में नहीं, भूमा में है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है—

यो वै भूमा तत्सुखमनल्पे सुखमस्ति ॥ ७ । २३ । १ ॥

"भूमा ही सुख है; अल्प में सुख नहीं है !"

यह भूमा परमात्मा है, जो न किसी सीमा में है, न किसी देश या काल में बँधा है। यह परमात्मा का धाम है। यह जीवात्मा भी उसी को जानकर और उसके दर्शन करके आनन्दमय हो जाता है। उसी भूमा (परमात्मा) के सम्बन्ध में उपनिषद् का यह आदेश है—

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ॥
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् । सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥
तै० २ । १ ॥

"जो उस परब्रह्म परमात्मा को जानता है, जो सत्य (सदा एकरस रहनेवाला) ज्ञान और अनन्त है और हृदय की गुफ़ा के अन्दर परम आकाश हृदयाकाश में छिपा हुआ है, वह एकदम उस सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ सारी कामनाओं को भोगता है।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मुण्डक उपनिषद् ने भी उस भूमा का पता बतलाया है—

हिरण्मये परे कोषे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः॥
मुण्डक० २।९॥

"सुनहरी परम कोष (हृदय) में निर्मल निरवयव ब्रह्म है, वह शुभ्र है, ज्योतियों की ज्योति है। उसको वे जानते हैं, जिन्होंने अपने-आपको पहचाना है।"

अपने-आपको पहचानने का यही प्रयोजन है कि जिसने आत्म-दर्शन कर लिये हैं। आत्मदर्शी ही उस परमात्मा को, हृदयाकाश में विराजमान उस प्यारे प्रियतम प्रभु को पा सकता है। इसमें कहीं यह न समझ लें कि बस ब्रह्म इतना ही है जो हृदयाकाश में बैठा है, अपितु—

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः॥ तै० ३।१०॥

"जो यहाँ पुरुष (हृदयाकाश) में शुद्धस्वरूप है और वहाँ सूर्य में है, वह एक ही है।"

कठ-उपनिषद् में कहा है—"जो यहाँ है, वही वहाँ है। जो वहाँ है, वही फिर यहाँ है। वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है, जो इसमें भेद-सा देखता है।"

श्वेताश्वतर उपनिषद् ने तो स्पष्ट कह दिया—

"वह देव एक है। सारे भूतों में छिपा हुआ है। सर्वव्यापक है। सब भूतों का अन्तरात्मा है। कर्मों का अधिष्ठाता है। सब भूतों का आधार है। साक्षी है। चेतन है। केवल (शुद्ध एक तत्त्व) है और निर्गुण है।"

परमात्मा को उसका भक्त हर स्थान पर अनुभव करता है। इस सारे संसार को कितने प्रबल नियम से कोई सत्ता चला रही है! पर्वतों पर वर्षा होती है, हिम पड़ती है। तब नदियाँ, नाले, स्रोत बह निकलते हैं। वह सारा जल कल-कल करता नीचे की ओर दौड़ता हुआ, सैंकड़ों-सहस्रों मील की लम्बी यात्रा करता हुआ, अन्त में समुद्र में जा मिलता है। उस समुद्र में से सूर्य द्वारा वह जल फिर ऊपर खींचा जाता है। तब वह वाष्प बनकर नीचे से ऊपर सहस्रों फीट की ऊंचाई पर चला जाता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। फिर मेघों का रूप धारण करके पर्वतों में वर्षा बनकर या हिम बनकर अपनी यात्रा फिर से प्रारम्भ कर देता है। कैसा अटल नियम है! यदि भगवान् जल को इस नियम में न रखते, तो ये सारे नद, नदियाँ और स्रोत सूख जाते; परन्तु करोड़ों-अरबों वर्ष व्यतीत हो गए और प्रभु के इस अटल नियम पर यह जल चल रहा है। इस सूर्य और चन्द्र को देखो! मनुष्य की बनाई हुई घड़ियाँ आगे-पीछे हो सकती हैं, परन्तु सूर्य और चन्द्र एक क्षण के लिए भी न लेट होते हैं, न समय से पूर्व दिखाई देते हैं। निस्सन्देह कोई महान् शक्ति या सत्ता या प्रभु है। वही ईश्वर है। वही सबका अन्तरात्मा है, वही परमात्मा है।

एक तो हमारे प्यारे प्रियतम का यह विराट् रूप है। संसार की हरेक वस्तु में साधक उसे अनुभव कर सकता है। इसमें भी वह दो प्रकार से दिखलाई देता है। एक तो समष्टि (सारे-के-सारे) जगत् के अन्तरात्मा के रूप में; दूसरे जब हम सूर्य, चन्द्र तथा अन्य नक्षत्रों और अग्नि इत्यादि में उसकी झलक देखते हैं, तो यह उसका व्यष्टि रूप होता है। फिर समष्टि जगत् में उसे तीन प्रकार से खेल खेलते हुए देखते हैं। एक तो जगत् की परम-प्रकृति (असली उत्पादन कारण) है जिसे माया कहते हैं; दूसरे—जब इस प्रकृति से यह जगत् पहले सूक्ष्म रूप से बनता है, तब उसके अन्तरात्मा के रूप में; तीसरे—दृश्यमान स्थूल जगत् के अन्तरात्मा के रूप में। यह उसका तीन प्रकार का स्वरूप समष्टि जगत् से सम्बन्ध रखता है। यह समष्टि और व्यष्टि रूप में भगवान् का सारा कार्य स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। जब साधक इस प्रकार से जगत् की हरेक वस्तु में अपने प्रियतम को देखता है तब वह सूर्य, चन्द्र, वायु, जल इत्यादि को कार्य करते हुए देखकर वेद के शब्दों में पुकार उठता है—

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन॥

अथर्व० १०।७।३७॥

"वायु क्यों बन्द नहीं होता? मन क्यों दम नहीं लेता? पानी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

किस सचाई को चाहते हुए कभी नहीं ठहरते ? यह सब किसके नियन से बँधे हुए सदा अपने काम में तत्पर रहते हैं ?"

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाती कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

ऋ० १० । १२१ । ६ ॥

"जिसकी रक्षा से थमे हुए, अपनी मर्यादा में खड़े हुए द्यौ और पृथिवी मन से काँपते हुए उसकी ओर देखते हैं, और जिसके अधीन सूर्य उदय होकर चमकता है, उस प्रभु की हम हवि से पूजा करें।"

उपनिषद् के शब्दों में साधक कह उठता है—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

कठ० ५ । १३ ॥

"नित्यों का नित्य, चेतनों का चेतन, अकेला ही जो बहुतों की कामनाओं को रचता है, उसको जो धीर पुरुष आत्मा में स्थिर देखते हैं, उनको सदा शान्ति होती है, औरों को नहीं।"

उस फैले हुए ब्रह्म की महिमा को देखकर और उसी को सारे जगत् का भी और अपना भी, सहारा समझकर साधक कहता है—

एषाऽस्य परमा गतिरेषाऽस्य परमा संपदेषोऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्दः ॥ बृ० ४ । ३ । ३२ ॥

"यह (ब्रह्म) इस (आत्मा) की परम गति है। यह इस आत्मा की परम सम्पदा है। यह इसका परम लोक है। यही इसका परम आनन्द है।"

ऐसे परमात्मा को पाने, देखने और जानने का कौन-सा साधन है ? इसके सम्बन्ध में उपनिषद् का आदेश है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥
मुण्डक० ३ । १ । ५ ॥

"सचाई, तप, यथार्थ ज्ञान और ब्रह्मचर्य में यह आत्मा सदा पाया जाता है। जो शरीर के अन्दर शुद्ध ज्योतिर्मय है, उसको वे यतिजन देखते हैं जिनके दोष क्षीण हो गए हैं।"

प्रभु के दर्शनों के लिए दोषों का क्षीण होना आवश्यक है। इसलिए सचाई, तप, ज्ञान और ब्रह्मचर्य द्वारा अपने अन्दर योग्यता उत्पन्न कर लेनी चाहिए। तब यह प्यारा जहाँ सारे जगत् में दृष्टिगोचर होता है, वहाँ भक्त-हृदय में भी उसके दर्शन ज्योति के रूप में होते हैं।

बाह्य जगत् में प्यारे की महिमा अनुभव करते हुए अब आँखें बन्द करके अन्दर चलो। शरीर के व्यापार बाह्य जगत् से भी लाखों गुणा आश्चर्यजनक हैं। यह अन्दर का कारखाना भी प्रभु की कृपा ही से चलता है। बाहर के जगत् और अन्दर के कारखाने में यह भेद है कि बाहर तो परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति—इन तीनों की सम्मिलित महिमा है। इसी मनुष्य-शरीर के अन्दर इन तीनों को निखरे हुए रूप में देखना है।

मनुष्य-शरीर को उपनिषदों ने 'ब्रह्मपुर' कहा है। छान्दोग्य-उपनिषद् ने तो घोषणा की है कि—

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म, दहरोऽस्मिन्नन्त-राकाशः, तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥
छान्दोग्य० ८ । १ ॥

"यह जो ब्रह्मपुर (शरीर) है, इसमें एक छोटा-सा आकाश है। अब उस (छोटे-से आकाश) के अन्दर जो कुछ है, उसका अन्वेषण करना चाहिए।"

यह है वह आत्मा, जो सारे पापों से अलग है। जरा और मृत्यु से परे है। शोक से परे है। भूख और प्यास से परे है। जो सच्ची कामनाओंवाला और सत्य सङ्कल्पोंवाला है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तैत्तिरीयोपनिषद् में शिक्षावल्ली के छठे अनुवाक (१) में कहा है—

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः। अमृतो हिरण्मयः ॥

"यह जो हृदय के भीतर आकाश है, उसमें यह विशुद्ध प्रकाशस्वरूप अविनाशी मनोमय पुरुष परमेश्वर रहता है।"

कठ० ६। १३ में यह आदेश है—

उपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति।

"परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करनेवाले साधक के लिए, परमात्मा का तात्त्विक स्वरूप (अपने-आप) शुद्ध हृदय में प्रत्यक्ष हो जाता है।"

जब सुकेशा ऋषि ने महर्षि पिप्पलाद से यह पूछा कि सोलह कला वाले पुरुष भगवान् के दर्शन कहाँ होते हैं? तो महर्षि ने उत्तर दिया—

इहैवान्तःशरीरे, सोम्य! स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति ॥ प्रश्न० ६। २ ॥

"हे प्रिय! यहाँ इस शरीर में ही वह पुरुष है, जिसमें सोलह कलाएँ प्रकट होती हैं।"

कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं। इसी हृदय में प्रभु का साक्षात्कार हो जाता है। प्रभु-दर्शन पाने के लिए इसी शरीर के अन्तः-करण, हृदय-देश में प्रवेश करना होता है। कहीं और जाने की ज़रूरत नहीं रहती। इस हृदय-देश में प्यारे को पाकर मानव किस प्रकार कृतकृत्य हो जाता है, इसका उल्लेख तैत्तिरीयोपनिषद् (६। २) ने इस प्रकार किया है—

आप्नोति स्वाराज्यम्। आप्नोति मनसस्पतिम्। वाक्पतिः-चक्षुष्पतिः। श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः। एतत्ततो भवति ॥

"वह स्वराज्य को प्राप्त कर लेता है। मन के स्वामित्व को पा लेता है। वह वाणी का स्वामी हो जाता है। नेत्रों का स्वामी, कानों का स्वामी, विज्ञान का स्वामी हो जाता है। उस पहले बतलाये हुए साधन से यह फल होता है।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

क्या संसार की कोई ऐसी बात रह गई है, जो प्रभु-दर्शन पानेवाले को प्राप्त न हो जाती हो ? स्वराज्य-प्राप्ति का प्रयोजन यह है कि यह किसी के अधीन नहीं रहता। प्रकृति का भी स्वामी हो जाता है। सारी इन्द्रियों, इन्द्रियों के सारे देवताओं और सारे विज्ञानों का भी स्वामी बन जाता है।

इतना मीठा फल कौन प्राप्त नहीं करना चाहता ? तब आओ, हम उसके दर्शन के सीधे साधन को अपनाएँ। और यह केवल कथनमात्र ही नहीं है, इतिहास बतलाता है कि जिन्होंने प्रभु-दर्शन पा लिये, वे कैसा अनुभव करने लगे। इस सम्बन्ध में ऋषि त्रिशंकु ने अपना जो अनुभव बतलाया है, उसे तैत्तिरीयोपनिषद् ने इन शब्दों में प्रकट किया है—

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनिव स्वमृतमस्मि। द्रविणꣳ सुवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः॥

तैत्ति० १०।१॥

"मैं संसार-वृक्ष का उच्छेद करनेवाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत के शिखर की भाँति उन्नत है। अन्नोत्पादन की शक्ति से युक्त सूर्य में जैसे उत्तम अमृत है, उसी प्रकार मैं भी अतिशय पवित्र अमृत-स्वरूप हूँ। परमानन्द-रूप अमृत में निमग्न और श्रेष्ठ धारणा-युक्त बुद्धि से सम्पन्न हूँ।"

ब्रह्म-प्राप्ति के पश्चात् त्रिशंकु ऋषि ने अपनी शक्ति का जो अनुभव किया, यह उसी की अभिव्यक्ति है। इसमें स्पष्ट बतला दिया गया है कि परमात्मा को प्राप्त करके भक्त हरेक शक्ति का स्वामी बन जाता है, जन्म-मरण के बन्धन से भी छूट जाता है।

लोहा जब अग्नि में पड़कर अग्निवत् हो जाता है, तो फिर किसी की क्या मजाल है कि उसे छू सके ! अग्नि के सारे ही गुण लोहे में आ जाते हैं। जब भक्त ने भगवान् को प्राप्त कर लिया, तो अब मृत्यु की, दुःखों की, सैकड़ों नृत्य करनेवाली प्रकृति की क्या मजाल कि उसे अपने जाल में फँसा सके ? वह तो स्वतन्त्र हो गया। आनन्दमय हो गया। अब प्रभु-दर्शन से तृप्त हुआ भक्त संसार में रहता हुआ, दुनिया

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

के कार्य करता हुआ भी, इसमें लिप्त नहीं होता। संसार-रूपी सागर को जाननेवाले पुरुष सांसारिक व्यापार का न तो त्याग करते हैं और न उसकी आकांक्षा ही करते हैं। वे सारे व्यवहारों का अनासक्त रूप से प्रयोग करते हैं। तब आपत्तियाँ उनका कुछ बिगाड़ती नहीं और सुख-भोग उन्हें विचलित नहीं करते। वे समभाव से आनन्दमय परमात्मा ही में मस्त रहते हैं। प्रभु-दर्शन का सोम-रस पीकर वह मस्ती चढ़ती है कि जो फिर उतरती ही नहीं—

नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन-रात।

ऋषि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' में यजुर्वेद के ११वें अध्याय के मन्त्रों की व्याख्या करते हुए लिखा है—

"वही परमात्मा अपनी कृपा से उन (उपासकों) को युक्त करके उनके आत्माओं में बड़े प्रकाश (बृहज्ज्योतिः) को प्रकट करता है और वही सविता उन उपासकों को ज्ञान और आनन्दादि से परिपूर्ण कर देता है।"

(ऋग्० भा० भूमिका)

वहाँ ऋषि ने इस मन्त्र का भी उल्लेख किया है—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा, आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।

यजुर्वेद ११। ५॥

"हे मोक्ष-मार्ग का पालन करनेवाले मनुष्यो! तुम सब लोग सुनो कि जो दिव्य लोकों अर्थात् मोक्ष-सुखों को पूर्व प्राप्त हो चुके हैं, उसी उपासना-योग से तुम लोग भी उन सुखों को प्राप्त होओ। इसमें सन्देह मत करो। इसलिए मैं तुमको उपासना-योग से युक्त करता हूँ।"

उपासना-योग के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द अपना यह अनुभव लिखते हैं—

"जो मनुष्य पूर्वोक्त रीति से परमेश्वर को सबका आत्मा जान के उसकी उपासना करता है, वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त होता है, यह बात प्रजापति परमेश्वर सब जीवों के लिए वेदों में बताता है।"

इसके बाद ऋषिवर आदेश करते हैं—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"जब मनुष्य उपासना-योग से परमेश्वर को प्राप्त होके प्रमाद-रहित होता है, तभी जानो कि वह मोक्ष को प्राप्त हुआ।"

(ऋ० भा० भूमिका)

उपासना कैसे करें ?

अब यह तो मालूम हो गया कि वह शुद्ध, बुद्ध, मुक्त-स्वभाव, अजर-अमर, सर्व-व्यापक भगवान् जहाँ सारे जगत् में ओत-प्रोत है, वहाँ इस ब्रह्मपुर (हृदय) में भी विराजमान है। इस शुद्ध ब्रह्म के दर्शन कैसे पायें ?

छान्दोग्य उपनिषद् में एक सुन्दर कथा आती है—छः ऋषि वैश्वानर की उपासना जानने के लिए अश्वपति के पास गये। अश्वपति के पूछने पर पहले ऋषि औपमन्यव ने कहा—

"मैं उसको द्यौ में उपासता हूँ।"

दूसरे ऋषि सत्यज्ञ ने कहा—

"मैं आदित्य में उपासता हूँ।"

तीसरे इन्द्रद्युम्न ने कहा—

"मैं वायु में उपासता हूँ।"

चौथे जन ने कहा—

"मैं आकाश में उपासता हूँ।"

बुडिल ने कहा—

"मैं जलों में उपासता हूँ।"

छठे ऋषि औद्दालक ने कहा—

"मैं पृथिवी में उपासता हूँ।"

तब अश्वपति ने सबकी बात सुनकर कहा—

"तुम इस वैश्वानर आत्मा को मानो अलग-अलग मान रहे हो। तुमको जानना चाहिए कि इस वैश्वानर आत्मा का द्यौ तो केवल सिर है, सूर्य नेत्र है, वायु प्राण है, आकाश धड़ है, जल बस्ति है और पृथिवी केवल पाँव है। वह सारे विश्व का अन्तरात्मा है, ऐसा जानते हुए तुम उसे उपासो!"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

परन्तु उपासना का सबसे उत्तम स्थान हृदय-देश है। बाह्य जगत् में छायारूप दर्शन होते हैं; हृदय में ही उसके साक्षात् ज्योति-स्वरूप में दर्शन होते हैं, क्योंकि इस मनुष्य-हृदय में देखनेवाला जीवात्मा भी वहीं विद्यमान है। दर्शक और दृश्य, दोनों एक ही स्थान पर यदि कहीं हैं तो वह केवल हृदय-देश ही है। इस हृदय-देश या ब्रह्मलोक में जीवात्मा और परमात्मा दोनों ही स्पष्ट देखे जाते हैं।

कठोपनिषद् की तीसरी वल्ली में आदेश है—

छायातपयोरिव ब्रह्मलोके।

"ब्रह्मलोक में छाया और धूप की भाँति आत्मा और परमात्मा दोनों का स्वरूप अलग-अलग स्पष्ट दिखाई देता है।"

कठोपनिषद् की चौथी वल्ली में बड़े रहस्य और मर्म की जो बात यम ऋषि ने नचिकेता को बतलाई है वह यह है—

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते॥
एतद्वै तत्॥ १२॥

"भूत से भविष्य-पर्यन्त का स्वामी पूर्ण परमेश्वर (आत्मनि मध्ये) जीवात्मा में अंगुष्ठ-परिमाण होकर विराजमान है—जब यह निश्चय हो जाता है, तब मनुष्य चिन्तित नहीं होता। यह एक रहस्य की बात है।"

मनुष्य-देह में परमात्मा सर्वत्र उसी प्रकार से व्यापक है, जैसे सारे संसार में। एवं जीवात्मा की जोत भी सारे मानव-शरीर में जगती है, परन्तु मानव-शरीर में हृदय इन दोनों के मिलाप का विशेष स्थान है; और चूंकि हृदय अंगुष्ठमात्र है, अतः उसका निवासी भी अंगुष्ठमात्र हुआ। परमेश्वर (परमात्मा) का ध्यान भी वहीं अंगुष्ठमात्र ही के रूप में होगा। यम ने स्पष्ट रूप से यह रहस्य खोल दिया है कि परमात्मा के दर्शन मानव-देह में जीवात्मा के स्थान अर्थात् हृदय ही में होते हैं। इससे आगे ऋषि फिर कहते हैं—

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः॥ एतद्वै तत्॥ १३॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"भूत और भविष्य का स्वामी वह अंगुष्ठमात्र पूर्ण निर्धूम ज्योति के समान शुभ्र, निर्मल और कान्तिमान् है। वह ही आज साक्षात् करने योग्य है और वही कल साक्षात्करणीय है—बस, यह मर्म की बात है।"

यहाँ ऋषि ने अत्यन्त अन्तरंग-रहस्य प्रकट कर दिया है कि अंगुष्ठ-मात्र हृदय-प्रदेश में परमात्मा के दर्शन शुभ्र और निर्मल ज्योति के रूप में होते हैं।

इतना समीप रहते हुए भी मनुष्य उसके दर्शन क्यों नहीं कर पाता ? कारण यह है कि दर्शन करनेवाले को बाह्य इन्द्रियाँ और अन्दर का इन्द्रिय-मन अन्तर्मुख नहीं होने देते। यह हृदय (ब्रह्मलोक) में उतरता ही नहीं। जब बहिर्मुख वृत्तियाँ उसे नहीं सतायेंगी, तभी वह अन्तर्मुखी होगा। तभी वह अपने-आपको देखता हुआ, शुद्ध अन्तःकरणवाला होकर फिर अपने-आपको जानेगा और अपने प्रियतम को देख सकेगा। कठोप-निषद् में कहा है—

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषी मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥
कठ० ६।९॥

"इसका रूप (आँखों से) देखने के लिए नहीं है, न कोई आँखों से इसको देख सकता है। यह हृदय से, बुद्धि से, मन से प्रकाशित होता है। जो जानते हैं, वे अमृत हो जाते हैं।"

आत्मा को आत्मा ही से देखा जा सकता है। बाहर और अन्दर के इन्द्रिय तो सहायक बन सकते हैं। मन केवल भगवान् के मन्दिर के द्वार तक साधक को पहुँचा देता है। अब द्वार खुलवाना और दर्शन करना, यह केवल आत्मा का ही काम रह जाता है।

प्रभु-दर्शन का साधन

ओंकार

वेद ने भी और उपनिषदों ने भी 'ओ३म्' द्वारा प्रभु-दर्शन का आदेश दिया है। 'ओ३म्' के द्वारा पर-ब्रह्म और अपर-ब्रह्म के दर्शन होते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः। ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ मुण्डक २।२।६॥

"जिस प्रकार से रथ के पहिये के केन्द्र में अरे लगे रहते हैं, उसी प्रकार शरीर की समस्त नाड़ियाँ जिस हृदय-देश में एकत्र स्थिर हैं, उसी हृदय में नाना रूप से प्रकट होनेवाले परब्रह्म परमात्मा अन्तर्यामी रूप से रहते हैं। इन सबके आत्मा प्रभु का 'ओ३म्' नाम के द्वारा ही ध्यान करो जो अज्ञान-रूप अन्धकार से सर्वथा अतीत और भवसागर के दूसरे पार है, उस प्रभु को प्राप्त करो। तुम्हारा कल्याण हो।"

श्री पण्डित राजाराम जी ने 'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम्' का अर्थ "उस आत्मा को 'ओ३म्' इस प्रकार ध्यान करो" किया है और पण्डित देवेन्द्रनाथ शास्त्री ने "उस परमात्मा का ओ३म् द्वारा ध्यान करो" अर्थ किया है। भाव यह है कि 'ओ३म्' जो उसका निज नाम है, उसी का ध्यान, उसी का जप और उसी का स्मरण करते रहो।

प्रश्न-उपनिषद् में एक कथा आती है। शैब्य सत्यकाम ने पिप्पलाद से पूछा—

"हे भगवन्! यदि कोई मनुष्य मरण-पर्यन्त सारी आयु ओंकार का ही ध्यान करे, तो वह किस लोक को जीतता है?"

इसके उत्तर में पिप्पलाद ने कहा—"हे सत्यकाम! यह सचमुच पर और अपर ब्रह्म है, जो ओंकार है।"

निस्सन्देह 'ओ३म्' प्रभु-प्राप्ति का असंदिग्ध और निश्चित साधन है। इसलिए पूरे निश्चय के साथ ऋषि ने कहा—

"यह सचमुच पर और अपर-ब्रह्म ही है, जो ओंकार है।"

ऋषि पिप्पलाद फिर आदेश करते हैं—

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति॥ प्रश्न० ५।७॥

"ओं की (एक मात्रा की) उपासना से उपासक ऋग्मन्त्रों द्वारा इस मनुष्य-लोक में (पहुँचाया जाता है); (ओम् की दो मात्राओं की

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उपासना से) यजुर्वेद-मन्त्रों द्वारा अन्तरिक्ष में (चन्द्रलोक तक पहुँचाया जाता है); पूर्णरूप से 'ओ३म्' की उपासना करनेवाला उस ब्रह्म-लोक में (पहुँचाया जाता है) जिसको ज्ञानी जन जानते हैं। विवेकशील साधक केवल ओ३म् के अवलम्बन (सहारे) के द्वारा ही उस पर-ब्रह्म प्रभु को पा लेता है, जो परम शान्त है, जो न बूढ़ा होता है, न वहाँ मृत्यु है, न भय है, वह सर्वश्रेष्ठ है।"

नचिकेता ने यम से वर माँगने का अधिकार ले लिया, तो यम ने नचिकेता के ज्ञानचक्षु खोलने के लिए भी यही कहा था—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

"सारे वेद जिस पद का कथन करते हैं, सारे तप जिसका प्रतिपादन करते हैं, जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य का सेवन करते हैं, वह पद तुझे संक्षेप में कहता हूँ। वह 'ओ३म्' यह पद है।"

यम ने इस मन्त्र में जहाँ 'ओ३म्' का वर्णन किया है, वहाँ साथ ही 'ओ३म्' के पाने का साधन (वेद-ज्ञान, तप और ब्रह्मचर्य) भी बतला दिया है। प्रश्नोपनिषद् में भी कहा है—

तेषामेवैष ब्रह्मलोको, येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्।
प्रश्न १। १५॥

"जो ब्रह्मचर्य-धारणापूर्वक तप करते हैं, जो सत्य से विचलित नहीं होते, उन्हीं को इस शरीर में ही ब्रह्म-लोक अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है।"

'ओ३म्' परमात्मा के दर्शन का असंदिग्ध साधन है, क्योंकि वेद भगवान् ने स्वयं यह आदेश दिया है—

ओ३म् क्रतो स्मर॥ यजु० ४०। १५॥

"हे कर्मशील! 'ओ३म्' का स्मरण कर।"

यजुर्वेद के दूसरे ही अध्याय में यह आज्ञा है—

ओ३म् प्रतिष्ठ॥ यजु० २। १३॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

" 'ओ३म्' में विश्वास-आस्था रख !"

इसलिए ब्राह्मण-ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर 'ओ३म्' की महिमा का गायन है और उपनिषदों में भी इसी का व्याख्यान है।

गोपथ ब्राह्मण में आता है—

आत्मभैषज्यमात्मकैवल्यमोंकारः ॥ कण्डिका ३० ॥

"ओंकार आत्मा की चिकित्सा है और आत्मा को मुक्ति देनेवाला है।"

माण्डूक्योपनिषद् का पहला ही आदेश यह है—

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्
भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव ॥ १ ॥

"यह 'ओ३म्' अक्षर क्षीण न होनेवाला अविनाशी है, यह सम्पूर्ण भूत, वर्तमान और भविष्यत् ओंकार का उपाख्यान है। सभी कुछ ओंकार में है।"

अर्थात् ओंकार से बाहर कोई नहीं, कुछ भी नहीं। जो कुछ हो चुका, जो कुछ अब है और जो कुछ होनेवाला है, वह सब 'ओ३म्' ही की महिमा है।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने 'पंचमहायज्ञविधि' में 'ओ३म्' के सम्बन्ध में यह आदेश दिया है—

'ओ३म्' यह परब्रह्म का सर्वोत्तम और प्रसिद्धतम नाम है। इस एक नाम में परमेश्वर के अनेक नाम आ जाते हैं।

छान्दोग्योपनिषद् का ऋषि कहता है—

ओ३म् इत्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।

"मनुष्य 'ओ३म्' इस अक्षर को उद्गीथ समझकर उपासना करे।"

इस ओ३म्-उपासना का महत्त्व प्रकट करने के लिए ऋषि ने मृत्यु से भयभीत देवताओं के सम्बन्ध में लिखा है कि जब देवों को रक्षा का और कोई स्थान न मिला, तो अन्त में वे स्वर में प्रविष्ट हुए और यह जो 'ओ३म्' अक्षर है, यही स्वर है और यही 'ओ३म्' मृत्यु से रक्षा करनेवाला, अभय-दान करनेवाला है। तब देवता 'ओ३म्' स्वर में प्रविष्ट होकर अमृत हो गये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यह बतलाने के पश्चात् ऋषि कहता है—

स य एतदेवं विद्वान् अक्षरं प्रणौति।
एतदेवाक्षरं स्वरममृतमभयं प्रविशति।
तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥
छान्दो० १।४।५॥

"जो मनुष्य इस रहस्य को जानकर 'ओ३म्' अक्षर की स्तुति-उपासना करता है, इस अमृत, अभय और अविनाशी स्वर में प्रवेश करता है, तो जिस प्रकार देव अमृत हो गए थे, वैसे ही वह भी अमृत हो जाता है।"

'गोपथ ब्राह्मण' के पूर्वभाग के पहले अध्याय की २२वीं कण्डिका में 'ओ३म्' की उपासना तथा जप का और भी एक रहस्य बतलाया है। वह यह है—

"ब्राह्मण की यदि कोई इच्छा हो, तो तीन रात उपवास करे और पूर्व की ओर मुख करके मौन रहकर, कुशासन पर बैठकर, सहस्र बार 'ओम्' का जप करे, इससे सारे मनोरथ तथा कर्म सिद्ध होते हैं।"

'योगदर्शन' समाधिपाद में जहाँ निर्जीव समाधि का साधन पूर्ण-वैराग्य बतलाया है, वहाँ इसके सुगम उपाय 'ईश्वर-प्रणिधान' का भी वर्णन किया है। ईश्वर कौन है ? क्या है ? इसको स्पष्ट करते हुए यह प्रकट किया है कि "जो क्लेश, कर्म-विपाक (कर्मों के फल) और आशय (कर्मों के संस्कार) के सम्बन्ध से रहित तथा समस्त पुरुषों से उत्तम है, वह ही ईश्वर है।" यही नहीं, अपितु वह ईश्वर गुरुओं का भी गुरु है और ईश्वर का नाम 'ओ३म्' है। 'ओ३म्' नाम का जप और उसके अर्थों का चिन्तन करने का आदेश 'योगदर्शन' ने किया है तथा 'ओ३म्' के जप से मुक्ति तक पहुँचना बतलाया है ; इसके साथ यह अनुभव भी प्रकट कर दिया है कि इस साधना को करते हुए अभ्यासी के मार्ग में जो विघ्न आकर खड़े हो जाते हैं, उनको दूर करने का उपाय क्या है। 'योगदर्शन' ने जो उपाय बतलाया है, वह यह है—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"उन (विक्षेप-विघ्नों) को दूर करने के लिए एक तत्त्व (ओ३म्) का अभ्यास करना चाहिए।"

'ओ३म्' के द्वारा आत्म-दर्शन का उल्लेख केवल वेद भगवान्, ब्राह्मण-ग्रन्थों, दर्शनों और उपनिषदों ही में नहीं किया, अपितु पुराणों और तन्त्र-ग्रन्थों तक में भी 'ओ३म्' का विधान किया गया है।

श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध में, जहाँ सूत जी तथा शौनक जी का संवाद आता है वहाँ सूत जी ने कहा है—

यदुपासनया ब्रह्मन् योगिनो मलमात्मनः।
द्रव्यक्रियाककारख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥
ततोऽभूत्त्रिवृदोङ्कारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट्।
यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥

"हे ब्रह्मन्! जिसकी उपासना से योगिजन अपने सारे मल को शुद्ध करके मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ वह नाद अ, उ, म् तीनों अक्षरों से युक्त 'ओ३म्' स्वरूप में प्रकट हुआ, जिसकी उत्पत्ति अव्यक्त है और जो स्वयं विराजमान है, एवं जो भगवान् परमात्मदेव का चिह्न अर्थात् नाम है ॥ ३९ ॥"

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः।
स सर्वमन्त्रोपनिषद् वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥

"परमात्मदेव ब्रह्म का साक्षात् वाचक 'ओम्' शब्द ही है। वही सर्वमन्त्र और उपनिषद् तथा वेदों का बीज है, वही सनातन है ॥ ४१ ॥

योगवासिष्ठ' के उपशम-प्रकरण १८ में चित्त के विनाश के दो उपाय योग और ज्ञान बतलाते हुए प्राणों के निरोध के साधनों में मुख्य साधन 'ओम्' का उच्चारण ही बतलाया है—

ओंकारोच्चारणे प्रान्ते शब्दतत्त्वानुभावनात्।
सुषुप्ते संविदो जातः प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥ २१ ॥

"ऊँचे स्वर में 'ओ३म्' का उच्चारण होने पर प्रान्त में (अन्त्य में) शेष तुर्यमात्रा-रूप शब्द-तत्त्व अनुभूत होता है, उसका अनुसन्धान करने से बाह्य नियमों के विज्ञान का (बहिर्मुख चित्त-वृत्ति का) जब अत्यन्त उपराम हो जाता है, तब प्राण-वायु का स्पन्दन रुक जाता है।"

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तन्त्र-ग्रन्थों में 'महानिर्वाणतन्त्र' को अधिक श्रेष्ठ माना गया है। इसमें महादेव (शिवजी) तथा पार्वती का संवाद है। इस तन्त्र के चतुर्दशोल्लास में शिवजी कहते हैं—

ओं तत्सदिति मन्त्रेण यो यत् कर्म्म समाचरेत्।
गृहस्थो वाप्युदासीनस्तस्याभीष्टाय तद् भवेत् ॥१५३॥
जपो होमः प्रतिष्ठा च संस्काराद्यखिलाः क्रियाः।
ओं तत्सन्मन्त्रनिष्पन्नाः सम्पूर्णाः स्युर्न संशयः ॥१५४॥

"गृहस्थी हो या उदासीन, कोई भी क्यों न हो, हे पार्वती! जप, हवन, प्रतिष्ठा और संस्कार आदि सारी क्रियाएँ यदि 'ओ३म् तत्सत्' इस मन्त्र से की जायँ तो वे अवश्य सम्पूर्ण होती हैं, इसमें सन्देह नहीं है।"

वेदानुयायी हों या पुराणों के भक्त, तन्त्र-ग्रन्थों पर चलनेवाले हों या अद्वैतवादी, द्वैत माननेवाले हों या त्रित्, कोई भी हों, यदि सारे-के-सारे एक स्थान पर पहुँचकर, एक स्वर से, एक मन होकर एक ही बात कहते हैं, तो वह यह है कि 'ओ३म्' प्रभु-दर्शन का बहुत सुन्दर, सरल और सुगम उपाय है। और तो और, बुद्ध भगवान् के अनुयायी, जिनको नास्तिक कहा जाता है, वे भी 'ओ३म्' का जप करते हैं। जब मैं गङ्गोत्री जा रहा था, तो मार्ग में एक ग्राम हर्षल आता है। इसमें तिब्बत और भूटान के लोग आबाद हैं। उन्होंने वहाँ एक नन्हा-सा मन्दिर बना रखा है, जिसको लगभग हर ईंट, हर पत्थर पर भूटानी अक्षरों में 'ओ३म् मणी पदमे होम' लिखा है और वे लोग इसी मन्त्र का जप करते हैं। कितना महत्त्वपूर्ण 'ओ३म्' का मन्त्र है! 'ओ३म्' का जागते, चलते, बैठे, सोते, जंगल में, बस्ती में, हर समय जप करते रहने का स्वभाव बना लेना बड़ा लाभ देता है।

'ओम्' को प्रभु-दर्शन का साधन बनाने का यह ढंग है कि यम और नियम के व्रत पूरे करके, दृढ़ आसन लगाकर रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम की जो विधि महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने सर्वसाधारण के लिए 'सत्यार्थप्रकाश' में अपने पूरे अनुभव से लिखी है, उसके अनुसार प्राणायाम आरम्भ करें। स्वामी जी लिखते हैं—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न-जल बाहर निकल जाता है, वैसे प्राण को बल से बाहर फेंककर, बाहर ही यथाशक्ति रोक देवें। जब बाहर निकालना चाहें, तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखें, जब तक कि प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो, तब धीरे-धीरे वायु को भीतर लेके फिर भी वैसे ही करते जायें, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो; परन्तु मन में 'ओम्' इसका जप करते जायें। इस प्रकार करने से आतमा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है। 'बाह्य विषय' अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना, दूसरा 'आभ्यन्तर' अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाये उतना रोक के, तीसरा 'स्तम्भवृत्ति' अर्थात् एक ही बार जहाँ-का-तहाँ प्राण को यथाशक्ति रोक देना, चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर आने लगे, तब उसके विरुद्ध न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर ले; और जब बाहर से भीतर आने लगे, तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये। ऐसे एक-दूसरे के विरुद्ध किया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं। बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र, सूक्ष्म-रूप हो जाती है और बहुत कठिन तथा सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होता है; बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।"

आगे चलकर ऋषि दयानन्द जी महाराज ने लिखा है—"जंगल में अर्थात् एकान्त में जा, सावधान हो के, जल के समीप स्थित हो के, नित्यकर्म को करता हुआ 'सावित्री' अर्थात् 'गायत्री-मन्त्र' का उच्चारण, अर्थ-ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल-चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।"

इस प्रकार प्राणायाम तथा 'ओम्' का जप करता हुआ साथ ही भृकुटि या आज्ञा-चक्र में 'ओम्' को ध्यान से लिखा देखे।

महर्षि दयानन्द ने उपासना के लिए एकान्त देश का भी उल्लेख

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

किया है। इसलिए इस सम्बन्ध में भी कुछ लिख देना उचित समझता हूँ।

स्थान

'ओम्' का जप तथा 'गायत्री' का जप एकान्त, सुन्दर स्थान पर करना चाहिए, क्योंकि स्थान या देश का भी बड़ा प्रभाव होता है। वेद भगवान् का भी आदेश है—

उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥ ऋ० ८।६।२८॥

"पहाड़ों की गुफाओं में और नदियों के संगम पर ध्यान करने से विद्वान् ब्राह्मण बना करते हैं।"

मेरा अपना अनुभव यह है कि कितने ही स्थल ऐसे हैं, जहाँ सहस्रों वर्षों से तपस्वी, योगी और साधक लोग साधना, तप और योग करते चले आ रहे हैं। उन स्थलों में ऐसा वायु-मण्डल और वातावरण बन गया है कि वहाँ शान्तचित्त से बैठकर 'ओम्' का जप तथा 'ओम्' का ध्यान किया जाय तो सफलता शीघ्र प्राप्त होती है। इस सम्बन्ध में कुछ अपने अनुभव भी लिखना चाहता हूँ। चिरकाल से मैं प्रतिवर्ष एक-दो महीनों के लिए भिन्न-भिन्न पर्वतों और वनों में चला जाया करता हूँ और सर्वदा निर्जन और एकान्त स्थान खोजकर मौन रहकर साधना करता हूँ। इस प्रकार कितने ही स्थानों में मैंने अनुभव किया है कि एकाग्रता बहुत शीघ्र मिलती है। हाँ, कितने ही स्थान ऐसे भी मैंने देखे, जहाँ एकाग्रता तो एक ओर रही, उलटा मन बहुत चंचल हो उठता है। कुछ स्थान मैंने ऐसे भी देखे, जहाँ मन को समाहित करने में विशेष सहायता मिलती है।

इनमें से एक तो जोगेन्द्रनगर, हिमाचल प्रदेश के ऊपर 'सियूरी वन' है। इस वन में मैं दो मास तक मौन रहा। मुझे वहाँ पूरी शान्ति मिली। दूसरे बैजनाथ ज़िला काँगड़ा के ऊपर 'घट्टा जंगल' में। तीसरा अनुभव देहरादून से तीन मील पूर्व की ओर नालापानी का तपोवन है। अमृतसर के धर्म-प्रेमी, दानवीर श्री बाबा गुरुमुखसिंह जी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ने यह सुन्दर वन कितने ही वर्ष हुए खरीद लिया था। जब पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती से यमुनानगर के 'साधन-आश्रम' में मैंने संन्यास की दीक्षा ली, तो मैं आत्म-चिन्तन और आत्म-दर्शन के लिए नालापानी के इसी 'तपोवन' में पहुँचा और एक घने वन में पर्णकुटी बनाकर मौन हो गया। यह 'तपोवन' अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। अब तो इस तपोवन के नीचे श्री बाबा गुरुमुखसिंह जी के त्याग तथा तप से एक विशाल आश्रम तथा यज्ञशाला भी बन गई है और पृथक्-पृथक् कुटियाएँ भी। जो-जो भी प्रभु-भक्त इस 'तपोवन' में आए हैं उन्होंने अपना यही अनुभव बतलाया है कि यह स्थान मन को वश में करने में पर्याप्त सहायता देता है। यह रमणीक सुन्दर तपोवन-आश्रम देहरादून स्टेशन से तीन मील के अन्तर पर है। तपोवन-आश्रम तक मोटर-ताँगा जाता है। आश्रम से फिर एक मील की चढ़ाई चढ़कर 'तपोवन' आ जाता है।

चौथा सबसे बढ़कर स्थान यह गंगोत्री है, जहाँ बैठा हुआ मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। बाल-ब्रह्मचारी योगिराज श्री स्वामी व्यासदेव जी ने यहाँ 'योग निकेतन' बनाया है। इसी निकेतन की एक कुटिया में मेरा निवास है। यहाँ का वायुमण्डल इतना शुद्ध, पवित्र, गम्भीर तथा शान्त है कि अशान्त-हृदय जन भी यहाँ शान्त हो जाता है। इसका कारण यही है कि हज़ारों वर्षों से गंगोत्री एक तपोभूमि बनी हुई है। गंगा की ध्वनि के अतिरिक्त यहाँ और कोई शब्द सुनाई नहीं देता। देवदारु और भोज-पत्र के वृक्षों के इस वन में इतनी शान्ति है कि मन स्वयमेव शान्त होने लगता है और अब भी कितने ही तपस्वियों तथा योगियों की यह तपोभूमि बनी हुई है। ऐसे स्थान निस्संदेह आत्म-दर्शन और प्रभु-दर्शन में सहायक होते हैं। ऐसे स्थलों में जब साधक तन्मय होकर शरीर को सीधा रखकर, एक आसन में बैठकर 'ओम्' पर ध्यान जमाता है और 'ओ३म्' का ही प्राणों द्वारा मन में जप करता है तथा साथ ही प्राणायाम भी करता है, तो उसके अन्तःकरण में पवित्रता आते-आते वह पर्दा फट जाता है, जिसने कि अन्दर के प्रकाश को छिपा रखा है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मेरा पाँचवाँ अनुभव ऋषिकेश से लेकर गरुड़चट्टी तक का है। ऋषिकेश में वैदिक आश्रम, आर्यसमाज मन्दिर से लेकर मुनि की रेती, गंगा किनारे की झाड़ी, फिर स्वर्ग-आश्रम और इसके ऊपर नीलकंठ का पर्वत तथा फिर लछमन-झूला एवं वहाँ से गरुड़चट्टी तक का यह सारा प्रदेश भी अपने अन्दर कुछ विशेषता रखता है और साधकों की पूरी सहायता करता है। परन्तु मलेरिया के दिनों में इस प्रदेश में नहीं रहना चाहिए।

पूना से १५-२० मील परे शिवाजी महाराज का किला सिंहगढ़ कभी तपोभूमि रहा है। वहाँ जाकर मैंने अनुभव किया कि मन को एकाग्र करने में, वहाँ का वायु-मण्डल भी सहायता देता है। रियासत मण्डी के आसपास के जंगल भी ध्वनियों के लिए लाभदायक हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी के सम्बन्ध में 'सत्यार्थप्रकाश' के ग्यारहवें समुल्लास में लिखा है—

"उत्तरकाशी आदि स्थान ध्यानियों के लिए अच्छा है; परन्तु दुकानदारों के लिए वहाँ भी दुकानदारी है।"

केदार बद्रीनाथ के सम्बन्ध में लिखा है—

"केदार का स्थान और वहाँ की भूमि बहुत अच्छी है। बद्रीनारायण की भूमि बड़ी रमणीक और पवित्र है।"

एक और स्थान भी मुझे प्रिय लगा, जो रियासत जम्मू में है। जम्मू नगर से ऊधमपुर को जाते हुए मार्ग में मैंथल पड़ाव आता है। वहाँ से मैंथल पैदल जाना होता है। पुनः वहाँ से झज्जर खड्डु पार करके एक स्थान मुत्तल आता है। इसे 'जंगल गली' भी कहते हैं। यहाँ जल का एक स्रोत है। इस स्थान पर भी एकाग्रता मिलती है।

मैं एक और स्थान का भी उल्लेख करना चाहता हूँ। यह स्थान हैदराबाद (दक्षिण) में है। हैदराबाद (सिकन्दराबाद) नगर से १०-१५ मील परे 'घटकेश्वर' गुरुकुल की भूमि तथा इसका जंगल भी मन को एकाग्र करने में सहायक बनता है। इसी प्रकार नर्मदा नदी का तट और इसके किनारे के जंगलों के कुछ भाग भी सात्त्विक वायुमण्डल से पूर्ण हैं और वहाँ अच्छे-अच्छे योगियों की कुटियाएं हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार के और भी कई स्थल होंगे, जहाँ मैं अभी तक पहुँच नहीं सका।

अपने घर में

परन्तु इसका यह प्रयोजन नहीं कि शेष स्थानों, नगरों, ग्रामों या बस्तियों में प्रभु-दर्शन नहीं हो सकता; निस्सन्देह हो सकता है। 'सांख्यदर्शन' के अन्तिम अध्याय के ३१वें सूत्र में कहा गया है कि ध्यान के लिए किसी पर्वत, वन या गुहा का नियम नहीं है। जहाँ भी चित्त एकाग्र करने में सुभीता हो, वहीं उपासना और भजन हो सकता है। इन विशेष स्थानों का वर्णन तो केवल उनके लिए कर दिया गया है, जो प्रभु-भजन में ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हों या जो एकाग्रता में सहायक स्थान चाहते हों। सारी दुनिया तो इन स्थानों में नहीं आ सकती। उनके लिए अपने नगरों से बाहर या अपने ही घरों में निवास करते हुए आत्म-दर्शन का प्रयत्न करना ठीक है।

हाँ, यह अवश्य होना चाहिए कि प्रभु-भजन के लिए अलग कमरा या स्थान हो। उसमें प्रभु-भजन के अतिरिक्त कोई काम न हो। कमरे में हवनकुण्ड हो। पवित्र ग्रन्थ रखे हों। कमरे को प्रतिदिन शुद्ध किया जाये और जिस समय इस कमरे या स्थान में प्रवेश करने लगें, तो यह धारणा करें कि मैं अब प्रभु-मन्दिर में जाने लगा हूँ। बाहर की दुनिया से इस समय मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। जिस प्रकार एक प्रेमी अपने प्रियतम के साथ एकान्त में बैठकर मन की बातें करता है, आप भी अपने प्रियतम से मिलाप का यत्न करते समय, बाकी सब-कुछ भूल जाएँ और 'ओ३म्' प्रभु ही में अपने आतमा को जोड़कर उससे निवेदन करें—

(१) तुम प्रभु दीनदयाल जी, आय पड़ा हूँ द्वार।
जैसा-कैसा हूँ हरी, कीजे यह न विचार॥

(२) प्रभु वे दिन कब आयँगे, बैठूंगा एकान्त।
नित्य करूँ स्वाध्याय को, आप हृदय में शान्त॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

(३) वर दीजो हे ओ३म् यह, कृपा करो प्रिय नाथ।
ओम् ओम् जपता रहूँ, सदा प्रेम के साथ॥
(४) तोर लगन मन में रहे, जब लग घट में प्राण।
तेरा ही सुमिरन रहे, तेरा ही हो ध्यान॥

ऐसी विनती करने के पश्चात् प्राणायाम करें। रेचक, पूरक, कुम्भक आदि प्राणायामों के द्वारा अन्तर की शुद्धि होती है। प्राणायाम के पश्चात् सर्वथा शान्त-स्थिर हो जायें। न शरीर हिले, न मन को कोई चेष्टा करने दीजिये। अपना ध्यान 'ओ३म्' अक्षर में अथवा आज्ञा-चक्र 'भृकुटि' में रखें। इसी को अपना निशाना बना लीजिये। इसी में आपने आत्मा का तीर लगाना है।

पिप्पलाद ऋषि ने प्रभु-दर्शन का जो साधन बतलाया है, वह यह है—

"ज्ञान के धनुष को पकड़ (भारी अस्त्र है) उसमें उपासना, लगातार ध्यान से तेज़ किये हुए तीर को जोड़ो और फिर केवल उसी सत्ता में लगाया हुआ जो चित्त है, उससे इसको खींचकर, उस अविनाशी लक्ष्य (निशाने) को बींधो। ओंकार धनुष है, आत्मा तीर है और उसका लक्ष्य ब्रह्म कहलाता है। इसको एक अप्रमत्त (पूरा सावधान) पुरुष बींध सकता है और यह तीर की नाईं (जो लक्ष्य पर लगकर उसके साथ एकरूप हो गया है, इस प्रकार वह ब्रह्म के साथ) अन्दर-बाहर सब-कुछ भूलकर—तन्मय हो जाये।" (मुण्डक २। २)

श्वेताश्वतर ऋषि ने अपना अनुभव इस प्रकार से प्रकट किया है—

"जैसे आग लकड़ी के अन्दर है, पर उसकी मूर्ति बाहर दिखाई नहीं पड़ती और न ही उसके चिह्न का नाश होता है। वह आग फिर लकड़ी से ग्रहण की जाती है। लकड़ियों के रगड़ने से उनमें छिपी हुई आग प्रकाशित हो पड़ती है, ऐसे ही 'ओ३म्' के द्वारा आत्मा इस देह में ग्रहण किया जाता है। अपने देह को (नीचे की) अरणि (लकड़ी) बनाकर और 'ओ३म्' को ऊपर की अरणि बनाकर और 'ध्यान-रूपी' रगड़ के अभ्यास से अपने इष्टदेव प्रभु के दर्शन करो।"

(श्वेता० १। १३। १४)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

'ओ३म्' अद्भुत शक्ति है। यह प्रभु-दर्शन का अचूक साधन है। सारे वेदों में, सारे प्राचीन ग्रन्थों में, सारे उपनिषदों में इसी एक ओम् ही के द्वारा प्रभु-दर्शन का आदेश किया गया है। कठ उपनिषद् ने इसी लिए ऊंचे स्वर से गाया है—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥ २। ६१॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ २। १७॥

"यही (ओम्) अक्षर ब्रह्म है, यही अक्षर परब्रह्म है, इसी अक्षर को जानकर जो, जो कुछ चाहता है, वह, वही पाता है" ॥ १६ ॥

"यही श्रेष्ठ सहारा है, यही सबसे बढ़कर सहारा है, इस सहारे को पकड़कर ब्रह्मलोक में मान पाता है" ॥ १७ ॥

प्रश्न उपनिषद् में कहा है—

जो तीन मात्रा (अ, उ, म) वाले अक्षर से परम पुरुष का ध्यान करता है, वह तेज में (सूर्य में) पहुँचकर जैसे साँप केंचुली से छूट जाता है, इसी प्रकार पाप से छूट जाता है।" ॥ प्रश्न० ५। ५॥

छान्दोग्य उपनिषद् ने 'ओ३म्' के ध्यान की महिमा इस प्रकार गाई है—

"वह ओम् पर ध्यान जमाता हुआ जाता है (जब उसने ब्रह्मलोक को जाना होता है, जो उसने उपासना से जाना है) सो वह जितनी देर में मन फेंका जाता है, उतनी देर में सूर्य में पहुँच जाता है। क्योंकि वह (सूर्य) लोक (ब्रह्मलोक) का द्वार है, जो ज्ञानियों के लिए खुला है और अज्ञानियों के लिए बन्द है।" (छां० ८। ३। ५)

श्वेताश्वतर उपनिषद् ने फिर कहा है—

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति॥
१। १५॥

"जैसे तिलों में तेल, दही में मक्खन, स्रोतों में जल और अरणियों में अग्नि (पेलने, बिलोने, खोदने और रगड़ने से) ग्रहण किया जाता है,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार परमात्मा भी आत्मा से ग्रहण किया जाता है। यदि कोई सत्य और तप से उसे देखता है, तो एक अद्भुत ज्योति प्रकट हो जाती है; आत्मा परमात्मा को ज्योति-रूप में देखता है।"

श्वेताश्वतर के अनुभव में तब—

यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासच्छिव एव केवलः।

श्वेता० ४। १८॥

"जब प्रकाश उदय होता है, तो वहाँ न दिन, न रात, न व्यक्त, न अव्यक्त है। वहाँ केवल शिव है।"

प्रयत्न करते रहो !

परन्तु इस साक्षात् दर्शन के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना होगा। तिलों से तेल ऐसे ही नहीं निकल आता। कोल्हू बनवाना होता है। बैल लाना होता है। सारी सामग्री एकत्रित करनी पड़ती है। फिर कोल्हू में तिलों को डालकर पेलना होता है, तब तेल मिलता है। मक्खन को प्राप्त करने के लिए भी बड़ा प्रयत्न करना होता है। लकड़ियों में से अग्नि प्रकट करने के लिए पसीना बहाना होता है। रगड़ते-रगड़ते प्राण फूलने लगता है, तब अग्नि के दर्शन होते हैं। अतएव प्रभु-दर्शन के लिए जब यत्न प्रारम्भ किया है, तो अब इसे जारी रखो। यदि आरम्भ में कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ, तो भी अधीर न हो जाओ। 'पंचदशी' में ठीक कहा है—

कालेन हि पच्यन्ते कृषिर्गर्भादयो यथा।
तद्वदात्मविचारोऽपि शनैः कालेन पच्यते॥

"खेती और गर्भ आदि जैसे तुरन्त ही तैयार नहीं हो जाते, इनके पकने में कुछ समय लगता ही है, इसी प्रकार आत्म-विचार भी धीरे-धीरे काल पाकर परिपक्व हुआ करता है।"

प्रयत्न करते रहो और प्रभु की कृपा की प्रतीक्षा करो! दर्शन अवश्य ही होंगे।

□

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमनसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।।

कठ० वल्ली २ । २४ ।।

९. कौन दर्शन पाता है ?

जिसकी वृत्तियाँ सांसारिक विषयों में लिप्त हैं और जिसका मन वैराग्य को प्राप्त नहीं हुआ, ऐसा मनुष्य प्रभुदर्शन तो एक ओर रहा, वह तो अपने-आपको भी नहीं देख सकता । चित्त की वृत्तियाँ उसे भटकाती फिरती हैं, कभी एक वस्तु में, तो कभी दूसरे रूप में ले जाती हैं । मन भी अपने ही व्यापार में लगा हुआ उसे आत्मा से विमुख करने में तत्पर रहता है । अतएव वे जन जो चित्त की वृत्तियों को और मन को अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा अपने वश में नहीं कर पाये हैं, उन्हें प्रभु के दर्शन से वंचित रहना पड़ेगा । चित्त और विषय के योग से ही मनुष्य बंधन में पड़ता है । 'योग-दर्शन' में सबसे पहला पुरुषार्थ यही बताया है कि चित्त की वृत्तियों को रोको । यह मन, जो बेलगाम हो रहा है, इसे लगाम डालो ।

कठोपनिषद् में बताया है कि कौन लोग उसे नहीं पा सकते । ऋषि का कथन है—

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
यस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ।।

कठ० ३ । ५ ।।

"वह जो सदा विज्ञानवान् नहीं होता और जिसका मन कभी जुड़ा हुआ नहीं होता (बुद्धि के हाथ में दृढ़ पकड़ा हुआ नहीं), उसके इन्द्रिय वश में नहीं होते हैं, जैसे दुष्ट घोड़े सारथि के वश में नहीं होते हैं ।"

"जो कि ज्ञानवान् नहीं होता और दृढ़ मनवाला नहीं, मन की लगाम जिसके अपने हाथ में नहीं और सदा अपवित्र है, वह उस पद को

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
(उस स्थान को पहुँचता है—प्रभु-दर्शन को) नहीं पहुँचता है, अपितु, संसार (जन्म-मरण के चक्र) को प्राप्त होता है।

संसार में कितने ही प्रकार के लोग हैं। इनमें से जो आत्मबल से वंचित हैं, जो प्रमाद और आलस्य में फँसे हुए हैं, जिनकी विरोचन-बुद्धि है, जो केवल इस शरीर को ही सब-कुछ समझते हैं और इसी की पूजा में लगे रहते हैं, जिन्होंने यह निश्चय कर रखा है कि चाहे जैसे भी हो धन कमाओ और खाते-कमाते ही मर जाओ, जिनको इतना भी ज्ञान नहीं कि जो वस्तु बनी है वह एक दिन समाप्त भी हो जायेगी, ऐसे लोग न आत्म-दर्शन कर सकते हैं न प्रभु-दर्शन। जिनका व्यवहार दूसरों से क्रूरता, दम्भ और छल-कपट का है, जिनकी वाणी वश में नहीं, जो ईर्ष्या-द्वेष की आग में जल रहे हैं, ऐसे लोग भी परमानन्द को नहीं पा सकेंगे। फिर वह मनुष्य जो दुश्चरित्रों से नहीं हटा, जिसका मन शान्त नहीं, वह भी प्रभु-दर्शन का अधिकारी नहीं। जिसे तत्त्व-ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, जिसकी वासनाएँ उसे कहीं-की-कहीं लिये फिरती हैं, जिसके मन का लय नहीं हुआ वह भी उसे नहीं पा सकता। जिसको आत्म-विश्वास (अपने-आप पर भरोसा) नहीं, निराश-हताश जीवन व्यतीत कर रहा है, जिसने खाना-पीना, मौज उड़ाना ही जीवन का उद्देश्य बना रखा है, जो ज़रा-ज़रा-सी बात पर क्रुद्ध हो उठता है, जिसकी जिह्वा उसके वश में नहीं, जो अभिमान से फुटबाल के ब्लैडर की तरह फूला रहता है, उसे भी प्रभु-दर्शन की आशा छोड़ देनी चाहिए। बाहर की कामनाओं के पीछे भागनेवाले अमृतपान नहीं कर सकते।

प्रभु-दर्शन के अमृत का पान वे करेंगे, जिन्होंने आत्म-बल बढ़ानेवाले ब्रह्मचर्य को अपना लिया है, जो अहिंसा और सत्य के मार्ग पर चल पड़े हैं, जिनकी दृष्टि में संसार के पदार्थ और विषय केवल इसलिए हैं कि जीवन-यात्रा को इनके द्वारा सफल बनाया जा सके। महोपनिषद् में लिखा है कि "वासनारूपी जल से पूर्ण इस संसार-सागर में जो प्रज्ञा-रूपी नौका पर आरूढ़ हैं, वे विद्वान् दूसरे पार पहुँच गए हैं। संसार-रूपी समुद्र को जाननेवाले पुरुष सांसारिक व्यवहार का न तो त्याग करते हैं, न उसकी आकांक्षा ही करते हैं।" (महोपनिषद् अ० ५। १७६)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

कठोपनिषद् का कथन है—

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ।। कठ० ३ । ६ ।।

"परन्तु जो सदा विवेक-युक्त बुद्धिवाला और वश में किये हुए मन से सम्पन्न रहता है, उसकी इन्द्रियाँ सावधान सारथि के अच्छे घोड़ों की भाँति वश में रहती हैं।"

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ।।

कठ० ३ । ८ ।।

"परन्तु जो सदा विवेकशील, बुद्धि से युक्त, संयम-चित्त और पवित्र रहता है, वह तो उस परम पद को प्राप्त हो जाता है, जहाँ से पुनः जन्म नहीं लेता।" कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को यह बतलाया है कि—

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।।

गीता० ८ । ८ ।।

"वह चित्त जो योगाभ्यास से युक्त है और (सिवाय परमात्मा के) किसी दूसरे में नहीं जानेवाला है, ऐसे चित्त से ध्यान करता हुआ हे अर्जुन ! वह परम दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है।"

उन पर यह रहस्य खुल चुका है कि वास्तव में तीन ही तत्त्व सृष्टि में काम कर रहे हैं—एक परमात्मा, दूसरे जीवात्मा और तीसरे प्रकृति। सृष्टि की रचना तो इस उद्देश्य के लिए है कि जीवात्मा सारी वासनाओं, दुःखों और क्लेशों से छूटकर आनन्दमय परमात्मा को पाकर सब लोक-लोकान्तरों में स्वतन्त्रता से, स्वेच्छा से, विचरने के योग्य बन जाये; जो यह भी निश्चय कर चुका है कि यह तत्त्व-ज्ञान वेद के सिद्धान्तों और ब्रह्मनिष्ठ तपस्वियों की संगति से प्राप्त किया जा सकता है तथा मन को वश में करने का साधन केवल योगाभ्यास है, और कोई नहीं। यह योगाभ्यास चाहे भक्ति-योग हो या कर्म-योग, ज्ञान-योग हो या राज-योग, मन्त्र-योग हो या हठ-योग, ध्यान-योग हो या नाद-योग, मन तथा दूसरी इन्द्रियों का वशीकरण योग द्वारा ही हो सकता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसी प्रकार वासना के क्षय का उपाय, विरोधी भावना को उत्पन्न करता है। यदि भोगेच्छा की अतिस्वल्प वासना के भी अधीन होकर उस भोग को ग्रहण कर लिया, तो वासना की यह आग तो कभी भी शान्त होगी ही नहीं। अग्नि में जितना ईंधन डालते जायेंगे उतनी ही अधिक वह भड़केगी, कम नहीं होगी। वासना के क्षय का यही साधन है कि वासना में आहुति न डाली जाए। वासना के सम्बन्ध में तो 'योगदर्शन' ने यह कहा है कि यह अनादि काल से है। तब यह मिटे कैसे ? वासना की यह आग बुझे कैसे ? क्योंकि यही वासना जाति, आयु और भोग के फल दिखाती है। यही वासना मनुष्य को जकड़े रखती है। सत्य तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य की प्रबल इच्छा होती है कि उसका सदा कल्याण हो ; मनुष्य ही क्यों, प्रत्येक प्राणी मृत्यु तथा दुःख से बचा रहना चाहता है और जीवन तथा सुख के साथ सदा मिलाप चाहता है। यही इच्छा वासना का कारण बनती है क्योंकि अपने कल्याण की इच्छा सदा बनी रहती है, इसीलिए वासना भी सदा बनी रहती है। ऐसी सदा बनी रहनेवाली वासना से छुटकारा कैसे हो ? इसका यही साधन है कि वासना की अग्नि में नई आहुतियाँ न डाली जायं और वैराग्य की राख से इस आग को दबा दिया जाये। वासनाओं को इन्द्रियों के विषय आहुतियाँ पहुंचाते हैं और चित्त इन वासनाओं का गोदाम-घर (स्टोर-हाउस) बना रहता है। जब इन दोनों चित्त और बाह्य-इन्द्रियों की दासता छोड़ दी जायेगी, तो वासना की अग्नि उसी प्रकार शान्त हो जाएगी जैसे उस दीपक की अग्नि जिसकी बत्ती का तेल समाप्त हो गया है। जिसने इस रहस्य को जान लिया है, उसके पाँचों क्लेश नष्ट हो जायेंगे। वह आत्म-दर्शन से कृतकृत्य हो जायेगा। आत्मा जब प्रकृति से अपने को अत्यन्त पृथक् जानकर अपरोक्ष ज्ञान का लाभ करता है, तब प्यास मिट जाती है। उस समय इसका चित्त विवेक-मार्ग पर चलनेवाला हो जाता है। जो भक्त राग-द्वेष और कुसंस्कारों से रहित हो गया है और जिसने साधना द्वारा इन्द्रिय, मन की अधीनता से अपने-आपको छुड़ा लिया है, उसी के सामने सत्यस्वरूप प्रकट हो जाता है। जिसने इस सत्य को हृदयंगम कर लिया है कि योग के आठों अंगों का अनुष्ठान करते हुए भी यदि चित्त

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

का संसार की तृष्णा से उपराम नहीं हुआ, अभी तक इस या उस पदार्थ में राग (भेद) बना हुआ है और वैराग्य की अवस्था प्राप्त नहीं हुई तो ऐसे वैराग्यशून्य अभ्यासी को भी प्रभु-दर्शन प्राप्त नहीं हो सकते। अभ्यास के साथ वैराग्य का रंग चढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। कुछ अभ्यासी ऐसे देखे गये हैं, जो हठयोग की क्रियाओं से लम्बी समाधियाँ भी लगाते थे परन्तु वैराग्य न होने के कारण उनके मन अशान्त, असन्तुष्ट और चिन्ताग्रस्त देखे गए। जिस हृदय में अशान्ति और चिन्ता का कूड़ा-करकट भरा हुआ है, वहाँ भगवान् अपनी ज्योति प्रकट नहीं करते। कुछ ऐसे भी हैं जो केवल विद्या (जो अविद्या है) के अभिमान में पड़े हैं। इनके सम्बन्ध में मुण्डक उपनिषद् ने लिखा है—

"अविद्या के अन्दर ही रहकर जो अपने-आप धीर बने हुए हैं और अपने-आपको पण्डित मान रहे हैं, वे मूढ़ जन ठोकरें खाते हुए उन अन्धों की तरह चक्कर लगाते हैं, जिनका कि चलानेवाला भी अन्धा है।"

(मुण्डक १। २। ८)

यदि आत्म-दर्शन और प्रभु-दर्शन की इच्छा है, तो इसके लिए आज ही से तैयारी करनी चाहिए। समय तो बीतता चला जा रहा है। आयु बहुत थोड़ी है। तब एक क्षण भी आत्म-दर्शन के प्रयत्न के बिना खोना भारी हानि है। इस मार्ग पर अग्रसर होने के लिए इन बातों की अत्यन्त आवश्यकता है।

(१) प्रभु-दर्शन के लिए 'दृढ़ संकल्प' करो और जब इस मार्ग पर चल पड़ो, तो फिर कष्ट आए या क्लेश, दुःख हो या सुख, चलते ही चलो। यहाँ तक कि—

आँधी चले, पत्थर पड़े, धरती फटे, बिजली गिरे।
बरसे प्रलय की आग, गरजे काल बली हमला करे॥
हे वीर! साधन-मार्ग पर, कसकर कमर आगे बढ़ो।
मन के खुले मैदान में, होकर खड़े खुलकर लड़ो॥

मत समझो कि आपमें शक्ति नहीं। आप तो शक्ति के भण्डार हैं। आपके संकल्प में वह बल है कि इसी से आप सृष्टि रच सकते हैं और इसी से प्रलय कर सकते हैं। तब इस मन की क्या मजाल, इन वासनाओं

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

की क्या सामर्थ्य कि आपको आपके लक्ष्य तक पहुँचने से रोक सके !

(२) इस मार्ग पर चलने के लिए शरीर बड़ी सहायता देता है। इसे निर्बल अथवा रोगी न होने दीजिए। पौष्टिक, सात्त्विक और मिताहार से इसे स्वस्थ बनाए रखिए।

(३) स्वस्थ शरीर द्वारा अब योग के आठों अंगों का अनुष्ठान कीजिये।

(४) इस अनुष्ठान की विधि किसी अनुभवी ब्रह्मनिष्ठ गुरु से सीख लीजिये।

(५) इन साधनों द्वारा अभ्यास करते हुए, जब आपका मन तथा इन्द्रियाँ वश में हो जायेंगे और वैराग्य की तीव्रता से चित्त का सम्बन्ध बाह्य वासनाओं से टूट जायेगा, तब आप एक अद्भुत आनन्द का अनुभव करने लगेंगे।

(६) वैराग्य उत्पन्न करने के लिए सृष्टि की बनावट का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना भी उपयुक्त है।

(७) सृष्टि के सारे वैभव को देखकर परमात्मा की बड़ी भारी सत्ता का अनुभव करने से मन और अन्तःकरण में आस्तिकता की जोत जग उठती है और चित्त-चकोर भवसागर से उड़कर अनन्त, पारावार-रहित प्रभु-सिन्धु के तट पर अपना नित्य निवास बनाने के लिए तैयार हो जाता है और गाता है—

चकई री चल चरन-सरोवर, जहँ नहिं प्रेम-वियोग।
जहँ भ्रम-निशा होत नहिं कबहूं, सो ही सर सुख जोग।।
जेहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल विमल सुकृत जल पीजै।
सो सर छाँडि कुबुद्धि विहंगम इहाँ रहे कहा कीजै।।

(८) तब आत्मा का प्रकृति से क्या सम्बन्ध है, परमात्मा का इस जगत् के बनाने का प्रयोजन क्या है, यह समझ में आने लगता है। स्पष्ट मालूम हो जाता है कि यह सारी रचना केवल इसलिए है कि आत्मा अपने शुभ-अशुभ भोग भोगे और सांसारिक दुःख-सुख से छटकर आत्म-दर्शन पाकर आनन्द-मग्न हो जाये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

(९) दुनिया को न कोई छोड़ सकता है, न दुनिया किसी को छोड़ती है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि दुनिया के सारे व्यवहार करते हुए अपनी वृत्ति को इसके जाल में फँसने न दिया जाए। तुलसी के कथनानुसार—

तुलसी जग में यों रहो, ज्यों रसना मुख माँहि।
खाती है घी तेल नित, फिर भी चिकनी नाँहि॥

इसी प्रकार पद्म-पुष्प का भी उदाहरण दिया जा सकता है—

जिमि जल भीतर पद्म है, जल में डूबत नाँहि।
ज्ञानी जग में रहत भी, लिप्तमान हो नाँहि॥

एक उर्दू कवि के इस कथन में तत्त्व है कि—

दुनिया में हूँ, दुनिया का तलबगार नहीं हूँ।
बाज़ार से गुज़रा हूँ ख़रीदार नहीं हूँ॥

(१०) इस मार्ग के यात्री में एक और भावना भी आ जाती है, वह यह कि जब प्रभु-दर्शन इस मनुष्य-देह ही में हो सकते हैं और यही मानव-शरीर ब्रह्मपुरी या प्यारे प्रियतम प्रभु का मन्दिर है, तो फिर वह यात्री संसार के सारे मनुष्यों को प्रभु-मन्दिर ही समझने लगता है। तब क्या वह इन मन्दिरों से घृणा, द्वेष या ईर्ष्या कर सकेगा? कदापि नहीं। अपितु वह तो इन सबकी रक्षा, सेवा करेगा और इनके कल्याण के लिए तत्पर रहेगा। इसी का नाम परोपकार है।

महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थप्रकाश' के नवम समुल्लास में भक्ति के साधनों में परोपकार को सत्य-भाषण के साथ ही स्थान दिया है। शेष सभी साधनों को पीछे रखा है। लोक-सेवा से आत्मदर्शी शीघ्र ही प्रभु-दर्शन का अधिकारी बनता है। कवि ने कहा है—

तरुवर फलें न आपको, नदी न पीवे नीर।
परमारथ के कारने, सन्तन धरा सरीर॥

(११) जब यह सब-कुछ हो चुका है, तो फिर यह अवस्था आने लगती है कि जिस दृढ़ संकल्प ने यहाँ पहुँचाया, उसी प्रकार के संकल्पों को समाप्त करने का समय आ गया; क्योंकि संकल्प-विकल्पों ही ने

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दुनिया बनाई थी। अब इस 'दुनिया' को समाप्त करने के लिए संकल्प-विकल्प की दुनिया समाप्त करने की रुचि हो जाती है। चित्त में संकल्प की क्रिया रोक दी जाय, कोई भावना आने ही न दी जाय, तब भावना का अभाव हो जाने से संकल्प स्वयं नष्ट हो जाता है। परन्तु यह अवस्था किसी-किसी के ही भाग्य में होती है।

□

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

१०. साधक की पुकार

तेरे द्वार पर बैठे-बैठे कितना समय बीत गया ! क्या मेरी टेर अभी सुनी नहीं गई ? सुनते चले आ रहे थे कि यदि भक्त एक पग आगे बढ़ाये तो भगवान् दो पग आगे बढ़कर गोदी में ले लेता है। परन्तु यह क्या ? मैं तो चलते-चलते थक गया। अब तो पाँवों में अधिक चलने की शक्ति नहीं। इस साधक यात्री के नयनों से बहता नीर भी तुमने नहीं देखा क्या ?

जगज्जननी ! अपने नन्हे-से बालक का रुदन तो कोई भी माँ सहन नहीं कर सकती। शिशु का रुदन तो पाषाण-हृदय को भी द्रवित कर देता है। फिर मेरा रोना-बिलखना क्या माता का हृदय पिघला नहीं सकेगा ? माँ, अब तो रोया भी नहीं जाता। आँसू भी सूख गये हैं। तुझे कैसे बताऊँ कि तेरे दर्शन के बिना मेरी क्या अवस्था हो रही है !

सुना था, तू एक-एक हृदय की एक-एक भावना को जानता है। परन्तु मेरे हृदय की व्यथा क्या तुम नहीं जान सके ? सब जाननेवाले ! मेरी इस अवस्था को देखकर क्या तुझे दया नहीं आती ? यह ठीक है कि तेरे निकट पहुँचने के लिए जिन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना आवश्यक है, मैं उनमें पूरे नम्बर नहीं ले पाया। यह भी ठीक है, वे तप और त्याग की भूमियाँ भी मैं प्राप्त नहीं कर सका, जो दर्शन से पूर्व प्राप्त कर लेनी चाहिएँ।

यह भी सत्य है कि यह शरीर उतना दृढ़ आसन लगाने और योग की सारी क्रियाएँ करने के योग्य भी नहीं। यह भी सत्य है कि मेरा मन-मन्दिर उतना स्वच्छ नहीं जितना तेरे स्वागत के लिए होना चाहिए।

हाँ महाराज ! यह भी ठीक है, अभी सांसारिक वासनाएँ भी पीछा नहीं छोड़तीं। यह मन लाख यत्न करे, फिर भी इतना नटखट बना हुआ है कि नित्य नये खेलों में उलझाये रखता है। यह भी ठीक है, इन इन्द्रियों के घोड़ों को वश में करते-करते मैं हार चुका हूँ। ये कभी इस

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

गढ़े में और कभी उस गढ़े में गिरा ही देते हैं। महाराज! क्या कहूँ, मेरी अवस्था कितनी दयनीय हो चुकी है। परन्तु हे दयालु! तूने ही अपने प्यारे योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान् द्वारा यह सन्देश भेजा था कि—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय! प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

गीता० ९। ३०-३१॥

"यदि महादुराचारी भी अनन्य-भक्त होकर मुझे भजता है, तो उसको भला ही जानना चाहिए; क्योंकि उसने भला निश्चय किया है। वह जल्द ही धर्मात्मा बन जाता है और सदा की शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! निश्चय जान, मेरा भक्त कभी भी नष्ट नहीं होता।"

मैं तो तेरी चौखट पर कब से सिर रखे हूँ। तुझे ही पुकार रहा हूँ। कब तक मेरी पुकार न सुनोगे? मैं भी तेरा ही पुत्र हूँ। नहीं उठूँगा तेरे द्वार से, चाहे जो हो। ले प्यारे! अब तेरी ही पवित्र वाणी द्वारा तुझे पुकारता हूँ—

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन्।
इमा जुषस्व नो गिरः॥ ऋ० ३। ४०। ८॥

"सुनो, मेरी टेर को सुनो! पास हो चाहे दूर हो, जहाँ हो, वहीं से आओ।"

महाराज! कृपा आज करो या कल, आपकी कृपा के बिना मेरे मन की प्यास बुझ नहीं सकती। यदि मैं वेदपाठी भी बन जाऊँ, योग के सारे अंगों का अनुष्ठान कर लूँ, फिर भी तो महाराज की कृपा के बिना मेरा उद्धार नहीं हो सकता है। आप ही के ऋषि ने घोषणा की थी कि—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँस्वाम्॥

मुण्डक० ३। २। ३॥

"यह आत्मा न वेद से पाया जा सकता है, न मेधा से, न बहुत सुनने से। जिसको यह आप चुन लेता है, वही इसे पा सकता है, उसी के लिए

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यह आत्मा अपना स्वरूप खोलता है।"

तो महाराज ! चुनने का काम तो स्वयं आप ही ने करना है। वेद के अन्दर तो आप यह कह ही चुके हैं कि जिस किसी को आप चाहते हैं, उसे आप मेधावी, तेजस्वी सब-कुछ बना देते हैं—

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥
ऋ० १० । १२५ । ५ ॥

"देवताओं तथा मनुष्यों को मैं स्वयं प्यारा वचन कहता हूँ। जिस-जिससे मैं प्यार करता हूँ, उसको तेजस्वी, विद्वान्, ऋषि और मेधावी बना देता हूँ।"

तब मैं इधर-उधर क्यों भटकूँ ? अब तो मैं तेरी ही प्रतीक्षा में बैठा हूँ—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ऋ० १ । १ । ९ ॥

"हे सुन्दरों से भी सुन्दर ! आओ, हमें दर्शन दो, ताकि हमारा कल्याण हो। आप हमारे पिता हो और हम आपके पुत्र हैं।

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम्।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥
ऋ० २ । ११ । १ ॥

"हे प्यारे प्रभो ! मेरी पुकार सुनो। उपेक्षा छोड़ो। हमें (भक्ति में) धनी बनाओ। हम तुम्हारी उत्तम भक्ति (के रस को तुम्हारी ओर) नदियों के समान बहाते हैं।"

प्र ते नावं न समने वचस्युवं
ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिष-
दिन्द्रमुत्सं न वसुना सिचामहे ॥
ऋ० २ । १६ । ७ ॥

"अब हम तेरे भक्तिरस में मस्त होकर तेरी नैया पर चढ़ बैठे हैं। हमें टेर सुनाने की वह शक्ति दे दे, जिसे तू भी सुने बिना न रह सके।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तू ही ऐश्वर्य का स्रोत है, जहाँ से पीते-पीते हम कभी भी न थकेंगे।"

तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षिः।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः॥
ऋ० ३।५३।२॥

"प्रभो! ठहरो, बैठो, कहाँ जाते हो? मैं अपने भक्तिरस में कमी न होने दूँगा। जैसे पुत्र पिता का पल्ला पकड़ लेता है, वैसे ही मैं तोतली बोली (बोलता हुआ) तुम्हारी शरण में आता हूँ।"

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः।
यद् दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते॥
ऋ० ८।८८।३॥

"महाराज! तुम्हारे आगे बड़ी-छोटी कोई रुकावट नहीं हो सकती। जब तुम अपने भक्तों को निहाल करना चाहते हो तो किसी की क्या मजाल है कि बीच में खड़ा हो सके!"

उत स्वया तन्वा सं वदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम्॥
ऋ० ७।८६।२॥

"मैं अपने अन्दर सोचता हूँ कि कब मैं तुम्हारे अन्दर लीन हो सकूँगा, तुम कब मेरी आराधना को स्वीकार करोगे, कब मेरा मन इतना अच्छा हो जायेगा कि मैं तुम्हारी कृपा का पात्र बन जाऊँगा।"

वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥
ऋ० १०।४७।७॥

"भक्ति से भरे हुए मेरे गीत प्यारे के पास दूत बनकर जा रहे हैं, ताकि वे मुझ पर मेहरबान हो जायें। मेरे हृदय की व्यथा बतलानेवाले गीत उस प्यारे इन्द्र के हृदय को उकसा देंगे, तब इन्द्र हमें शक्ति और भक्तिवाला धन देंगे।"

कद् रुद्राय प्रचेतसे मीढ्हुष्टमाय तव्यसे।
वोचेम शन्तमं हृदे॥ ऋ० १।४३।१॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"क्या हम रुद्र के लिए उसके हृदय को प्यारा लगनेवाला गीत गा सकेंगे ? यदि गा सकेंगे, तो क्या वह दाता इसे सुनेगा जो ज्ञानी और बलवान् है ?"

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके ॥
ऋ० १ । २५ । १९ ॥

"तपे मन को शान्त करनेवाले ! मेरी इस टेर को सुन । आज मेरे ऊपर दया कर दे, तुझे पुकार रहा हूँ । मेरी सहायता कर !"

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् ॥
ऋ० १ । २५ । १७ ॥

"आओ न प्यारे ! एक बार आओ । हम बातचीत करें । कितना सुन्दर मधु आपके लिए तैयार किया है ! होता बनकर इसको स्वीकार करो । यह आपको भी तो प्यारा है ।"

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ॥
ऋ० १ । २५ । ५ ॥

"कब हम अपने ऊपर कृपा के लिए उस प्यारे प्रभु को अपनी ओर झुकायेंगे, जिसकी दृष्टि सब पर फैली हुई है और जो अखण्ड सम्पदावाला है ।"

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ । २५ । १ । १ ॥
मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः ।
मा हृणानस्य मन्यवे ॥ ऋ० १ । २५ । २ । १ ॥

"सब-कुछ जाननेवाले प्यारे भगवान् ! हम दिन-प्रतिदिन जिस किसी तेरे नियम को तोड़ते हैं, जैसा कि सभी लोग तोड़ते हैं ॥ १ ॥ हमें शत्रु को मार देनेवाली चोट का निशाना मत बना । हम तेरे क्रोध का निशाना न बनें ॥ २ ॥"

सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्रः ॥
ऋ० ४ । १७ । १८ ॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

"मीत का मीत तू है प्रभो !
रक्षक भी तू है ।
स्तोत्र गानेवाले को उत्तम जीवन का दान देनेवाला तू है ।
हमारा मंगल कर !
तू ही कृपा कर !

हम धर्म के अनुसार किए हुए अपने सारे कर्म को, अपने सारे जीवन को तेरे चरणों में अर्पित करते हैं ।"

स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ।।
ऋ० ४ । १७ । १९ ।।

"जो तेरी स्तुति करते हैं, हे प्रभो ! उनके तू सभी पाप नष्ट कर देता है ।
वे सूक्ष्म पाप भी जो तेरे भक्त को दिखाई नहीं देते ।
यह तेरी अनन्त कृपा है ।
जो तुझे प्यार करते हैं, हे प्रभो ! उनके हृदय में तेरा आनन्द समाया रहता है ।
हाँ—तेरा आनन्द ।
यह तेरा अनन्त प्यार है ।
तेरी आज्ञा को प्रभो ! कोई भी टाल नहीं सकता—
न विद्वान्, न अविद्वान् ।
यह तेरी अनन्त शक्ति है ।
शक्ति के भण्डार ! मैं तो अल्पज्ञ हूँ । तू तो सर्वज्ञ है । मुझमें इतनी शक्ति कहाँ कि तेरी सारी परीक्षाओं में पूरा उतरूँ !"
मुझमें तो त्रुटियाँ रह ही जाती हैं । अपराध हो ही जाते हैं ।
क्या करूँ ? न चाहते हुए भी पग फिसल ही जाते हैं ।
मैं पतित हूँ, तू तो पतित-पावन है ।
सुना तो यही है । भक्त तुलसीदास के शब्दों में भगवन् ! मैं भी यही कहता हूँ—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मैं हरि पतित-पावन सुने।
हौं पतित तुम पतित-पावन, दोउ बानक बने।
जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे।

यदि तू सहारा देगा, तभी तो तेरे भव-सागर से पार उतर सकूँगा। तेरी ही दया, तेरी ही कृपा से मेरा उद्धार हो सकता है। तुझे पाने-वाले ऋषि भी यही कहते हैं। तब प्यारे! मुझे अब कब तक प्रतीक्षा में रखोगे?

नाथ! देख नहीं रहे हो क्या? अब तो शरीर भी जीर्ण हो रहा है, महाराज! शरीर की एक-एक शक्ति ने भी मुँह फेरना शुरू कर दिया है। सारे ही साथी साथ छोड़ते चले जा रहे हैं और यह आत्मा तेरे बिना अकेला पड़ा यहाँ घबरा रहा है। प्यारे, तेरे बिना कौन सुधि लेनेवाला है? मलिक जयनारायण के शब्दों में अपनी कामना प्रकट करता हूँ—

सागर तट पर बैठी हूँ मैं कब से नाथ अकेली।
चले गये मेरे जितने थे बान्धव, सखी-सहेली॥
तरल तरंगमयी लहराती भव-वारिधि जल-धारा।
दूर गगन में चमक रहा है मार्ग-प्रदर्शक तारा॥
प्राणेश्वर! करुणानिधि! हूँ मैं तव चरणों की दासी।
तेरे चरण-कमल-रज की हूँ, देव! सदा मैं दासी॥
मैं हूं कुटिया की भिखारिणी, तुम त्रिभुवन के स्वामी।
मेरे हृद्गत भावों के प्रभु! तुम हो अन्तर्यामी॥
जीवन-नौका जीर्ण पड़ी है, उठती प्रबल बयार।
कैसे पहुँचेगी यह तेरे स्वर्ण-धाम के द्वार॥
स्वामी मेरे! चलो मुझे ले, भव-सिंधू के पार।
जहाँ न होगी अन्तस्तल में वीणा की झंकार॥
तेरे पद-जल से प्रक्षालित होवे जीवन मेरा।
'आत्मोत्सर्ग करूं भगवत्सेवा में यह व्रत मेरा॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हाँ, ठीक कहा योग-दर्शन के भाष्यकर्त्ता श्री व्यास जी ने कि "भक्ति-विशेष से झुका हुआ ईश्वर अपने शुभ-संकल्प से भक्त पर अनुग्रह करता है।"

और अटल सत्य है कि—

किलमभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने।

"शोभा-निकेतन भगवान् के प्रसन्न होने पर क्या अलभ्य रहता है!"

सुन ली टेर प्रभु ने। कब तक न सुनता! आज सुनता कि कल, उसे सुननी ही थी टेर मेरी। अहा! अब तो चारों ओर ज्योति है। अन्धकार कहाँ चला गया? अब अन्धकार की परछाईं भी नहीं—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा
सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ यजु० २०।२१॥

"अन्धकार से परे, पाप से परे, सबसे ऊँचे सुखमय देव का (ध्यान के बल से) साक्षात् करते हुए हमने उस देवों के देव, प्रकाशमय उत्तम ज्योति को पा लिया है।"

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते। कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥

ऋ० ९।११३।११॥

"जहाँ आनन्द, मोद-प्रमोद की स्थिति है, जहाँ मन की सारी कामनाएँ पूरी होती हैं, वहाँ मुझे अमृत बना।"

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः। लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव॥

ऋ० ९।११३।९॥

"जहाँ द्यौ के तीनों सुखमय चमकते हुए स्थानों में स्वतन्त्रता से विचरना होता है, जहाँ लोक ज्योतिपूर्ण है, वहाँ मुझे अमृत बना।"

हाँ-हाँ, प्रभु की कृपा होते ही मैं वहाँ पहुँच गया हूँ, जहाँ आनन्द के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। वहाँ प्रकाश न कभी अस्त होता है, न कभी उदय—

न तत्र निम्लोचश्च नोदियाय कदाचन। छा० ३॥११॥

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अब तो जैसे अनन्त दिन चढ़ गया है। अब तम कहाँ ? अब शोक कहाँ ? अब रुदन कहाँ ? अब कष्ट-क्लेश कहाँ ? वे तो सब-के-सब प्रभु-कृपा का सूर्य उदय होते ही भाग गये। अब तो भय भी कोई नहीं रहा—

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन ।। तै० २।६।।

मुझे चारों ओर से आवाज़ें आ रही हैं। अन्तरिक्ष कह रहा है, 'प्रभु के प्यारे! मैंने तुझे अभय कर दिया है।' द्यौ और पृथिवी भी पुकार रहे हैं, 'तुम अभय हो गये हो।' आगे से, पीछे से, ऊपर से, नीचे से, सब ओर से मुझे अभयदान मिल गया है। प्यारी माता की गोद में पहुँचकर शिशु को काहे का भय? अब तो माता ने पवित्र स्तनों से अमृत पिला दिया। अब और कुछ पीने की कामना नहीं रही—

कबिरा प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय।।
सोऊँ तो सुपने मिलै, जागूँ तो मन माँहि।
लोचन राता सुधि हरि, बिछरत कबहूँ नाँहि।।

बस, अब आत्म-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व का मिलाप हो गया है। प्रेमी और प्रियतम के इस मिलाप के पश्चात् न वाणी, न नेत्र, न कोई और इन्द्रिय कुछ कह, सुन या देख सकते हैं। यहाँ पहुँचकर गूंगे की रसना के सदृश, अमीचन्द कैसे बताये कि क्या आनन्द प्राप्त किया!

ओ३म् तत्सत्! ओ३म् तत्सत्!

□

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः ।। मनु० ६ । ७३ ।।
सूक्ष्मतां चाऽप्यवेक्षेत योगेन परमात्मनः ।। मनु० ६ । ६६ ।।
अयन्तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ।।

याज्ञवल्क्य ।।

११. अनुभव तथा विज्ञान

उपासना के मार्ग पर चलते हुए मेरे अनुभव में जो बात आई है अथवा दूसरे साधक महानुभावों तथा योगी-महात्माओं से जो अनुभव ज्ञात हुआ है, उसे साधकों के लाभार्थ यहाँ दिया जाता है। गंगोत्री में 'योग निकेतन' की कुटिया में चार मास निरन्तर निवास करके, योगि-राज ब्रह्मचारी श्री स्वामी व्यासदेव जी महाराज से बहुत-से विशेष अनुभव प्राप्त हुए, जिनको मैंने स्वयं भी प्रत्यक्ष किया। योग का यह विज्ञान और अनुभव अत्यन्त उपयोगी है।

(१) गायत्री मन्त्र के अर्थों तथा भावों को पूर्णरूपेण हृदयंगम करके पूरे नियम तथा पवित्रता से यदि एक करोड़ पच्चीस लाख गायत्री मन्त्र का जप किया जाय, तो हृदय की भूमि भक्ति का बीज बोने के योग्य हो जाती है।

(२) इसके पश्चात् 'ओम् भूर्भुवः स्वः' इसका एक करोड़ पच्चीस लाख बार जप किया जाय, तो विशेष भक्ति हृदय में जाग्रत् हो जाती है।

(३) इसके पश्चात् केवल 'ओ३म्' का ध्यान, और 'ओ३म्' ही का मानसिक जप सवा करोड़ किया जाय, तो निस्सन्देह मन को एकाग्रता प्राप्त होती है और ज्योति-दर्शन होती है।

(४) अपने-अपने गृह में प्रभु-भजन, योगाभ्यास तथा जप इत्यादि करने के अतिरिक्त यदि वर्ष में एक या दो बार सर्वथा एकान्त और निर्जन वन या स्थान में जाकर और अपने-आपको प्रभु के अर्पण करके,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रभु-भजन किया जाय तो सफलता शीघ्र प्राप्त होती है।

(५) परन्तु जो लोग अभी काम-वासना पर विजय प्राप्त नहीं कर सके, उन्हें एकान्त-वास से लाभ नहीं पहुँचता; अपितु एकान्त में उनकी काम-वासना अधिक प्रबल होकर, उन्हें अधिक कुमार्ग पर ले जाती है। अतः इस प्रकार के व्यक्ति को चाहिए कि वह किसी अनुभवी विद्वान् वीतराग महानुभाव के सत्संग में रहकर साधना करें। काम-वासना के दमन के लिए आवश्यक है कि नेत्र द्वारा, जिस देवी को देखे, उसमें माता की भावना करे और उसे उपास्य-रूप समझे और देवियाँ भी पर-पुरुष को पिता-रूप समझें।

(६) वर्ष में एक मास या दो सप्ताह या प्रति सप्ताह एक दिन सर्वथा मौन रहने से मानसिक शक्ति बढ़ती है, आत्मा में बल आता है और वाणी में आकर्षण उत्पन्न होता है।

(७) कभी-कभी उपवास करने से पेट को विश्राम मिलता है और जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

(८) जब साधक पहले-पहल ध्यान में बैठता है, तो मन उसके सामने नाना प्रकार के दृश्य लाता है और किसी-किसी समय तो वर्षों की भूली हुई बातें भी ला खड़ी करता है, जिससे हृदय में अधिक अशान्ति होने लगती है। ऐसी अवस्था में 'ओ३म्' का जाप और रेचक, पूरक, प्राणायाम (लम्बे-लम्बे श्वास) बहुत लाभ देते हैं और मन की उस रची हुई दुनिया का अन्त कर देते हैं।

(९) लगभग साढ़े तीन घण्टे एक आसन में बिना कष्ट के और बिना हिले बैठने से मन की चंचलता क्षीण होने लगती है। ऋषि दयानन्द 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में लिखते हैं—

"जब आसन दृढ़ होता है, तब उपासना करने में कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता और न सर्दी-गर्मी अधिक बाधा करती है।"

(१०) जब शरीर तथा मन में तमोगुण प्रधान हो तो भजन अथवा ध्यान में निद्रा आने लगती है। ऐसी अवस्था में नेत्र खुले रखकर ऊँचे स्वर से 'ओ३म्' का जप करना चाहिए और चन्द्र-स्वर को चलाना चाहिए। यदि समस्वर कर लिया जाय तो लाभ अधिक होगा।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

(११) जब किसी प्रकार से भी मन की चंचलता दूर न होती हो और कोई चिन्ता अथवा दाह सता रहा हो, तो एकान्त स्थान में 'ओ३म्-गान' करना चाहिए और पूरे बल से ऊँचा स्वर करके 'ओ३म्' का लम्बा उच्चारण करना चाहिए, फिर मुख में गुनगुनाते हुए 'ओ३म्' का जप आरम्भ कर देना चाहिए।

(१२) जब ध्यान का अभ्यास करने के लिए बैठें, तो शरीर को थोड़ा ढीला रखें। तब नेत्र मूंदकर एक विशाल नीले आकाश का ध्यान करें और अपने सूक्ष्म शरीर को उसमें ले जाएँ। इस समय यदि कोई और संकल्प या विचार आने लगे, तो उसे मन से तत्काल निकाल दें। हृदयाकाश सर्वथा संकल्पशून्य हो जाय, तब हृदयाकाश को समष्टि-आकाश में मिला दे। ऐसा मिलाप होते ही केवल सूक्ष्म शरीर ही दिव्य नेत्रों से दिखलाई देगा, और कुछ नहीं।

(१३) अब योगिराज स्वामी व्यासदेव जी के योग के अनुभव पढ़िये—

(१३) आसन बढ़ाने की विधि

यम-नियमों का वर्णन तो पहले ही विस्तार से हो चुका है। आगे और योग-अङ्गों का वर्णन करते हैं। आसन के बढ़ाने का क्रम यह है कि अभ्यासी जिस आसन पर सुखपूर्वक बैठ सके, उस पर बैठकर पहले दिन १५ मिनट, आधा घण्टा या एक घण्टा बैठे, जिससे विशेष थकावट न हो। दूसरे दिन आसन में दो, चार या पांच मिनट क्रम से प्रतिदिन बढ़ता चला जाय। यदि दस-बीस दिन के पश्चात् वह दो घण्टे की स्थिति पर जाकर रुक जाय या थकावट होने लगे, तो फिर वह कुछ दिन तक उतनी देर तक के आसन का अभ्यास करता रहे। जब अभ्यास करते-करते आसन की थकावट या शिथिलता दूर हो जाय, तो पुनः क्रम से एक, दो, चार या पांच मिनट प्रतिदिन बढ़ाना शुरू कर दे। इस क्रम से घण्टे ही नहीं अपितु कई-कई दिन का आसन भी स्थिर हो सकता है। यदि एक अभ्यासी साढ़े तीन घण्टे या छः घण्टे या इससे अधिक आसन को बढ़ाना चाहता है, तो पहले दिन वह

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

साढ़े तीन घण्टे के मध्य में एक-दो या चार बार एक मिनट के लिए उठकर आसन की थकावट को दूर कर ले। कुछ दिन या एक-दो मास तक वह ऐसा अभ्यास करता रहे। फिर चार बार उठने के बजाय दो या तीन बार उठा करे। फिर तीसरे महीने में एक बार और कम कर दे। चौथे मास में उसका आसन साढ़े सात या छः घण्टे का हो जायेगा। आसन 'ध्यान' और 'समाधि' में अत्यन्त उपयोगी है। जिसका आसन स्थिर नहीं होगा, उसको ध्यान-समाधि में स्थिरता नहीं हो सकती। आसन व्यायाम के उद्देश्य के लिए योग का अंग नहीं बतलाया गया, अपितु यह धारणा, ध्यान और समाधि के लिए अत्यन्त उपयोगी है, इसीलिए इसका अनुष्ठान आवश्यक है।

(१४) प्राणायाम

आसन के पश्चात् प्राणायाम के सम्बन्ध में कुछ अनुभव लिखते हैं। जिसका मन जप तथा ध्यान में न लगता हो, उसके लिए प्राणायाम चित्त की स्थिरता के लिए बहुत लाभदायक है; क्योंकि मानसिक जप तथा ध्यान प्राणायाम की अपेक्षा सूक्ष्म विषय हैं और प्राणायाम स्थूल व्यापार हैं; इसीलिए मन सूक्ष्म से हटकर स्थूल के व्यापार में स्थिर हो जाता है। अभ्यासी को देखना चाहिए कि किस ऋतु में कौन-से प्राणायाम उसके लिए उपयोगी हैं, या किस प्रकृतिवाले को कौन-सा प्राणायाम लाभदायक है। 'योगदर्शन' के सिद्धान्त से प्राणायाम चार ही प्रकार का है, परन्तु दूसरे आचार्यों के सिद्धान्त में प्राणायाम के सैकड़ों प्रकार के भेद हैं।

जिस मनुष्य की पित्त प्रकृति है, उसके लिए भस्त्रिका प्राणायाम हानिकारक है, क्योंकि भस्त्रिका पित्त को प्रधान करता है और कफ एवं वात को शान्त करता है। शीतली प्राणायाम पित्त को शान्त करनेवाला है। पूरक उष्णता तथा पित्त को पैदा करता है। इसी प्रकार पूरक करके आभ्यन्तर-कुम्भक भी या स्तम्भ-वृत्ति भी पित्त को प्रधान बनाते हैं, अतएव कफ और वात प्रकृतिवालों के लिए विशेष उपयोगी हैं। परन्तु रेचक प्राणायाम सब दोषों को शान्त करता है; प्रत्येक ऋतु

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

में किया जा सकता है और प्रत्येक प्रकृतिवाले के लिए उपयोगी है, चाहे वात हो या पित्त अथवा कफ। अभ्यासी को अपनी प्रकृति, देश और काल को देखकर प्राणायाम करना चाहिए। यदि किसी अनुभवी महापुरुष से सीखकर किया जाय, तो प्राणायाम शरीर तथा मन के लिए बड़ा उपयोगी होता है, अन्यथा अनेक रोगों का कारण बन जाता है।

यह बात भी ध्यान में रहनी चाहिए कि प्राणायाम से मन सर्वथा निष्क्रिय नहीं होता; क्योंकि जब अग्निप्रदीपक पूरक प्राणायाम किया जाता है, तो उससे नाड़ी की गति और हृदय की हरकत भी कुछ समय के लिए बन्द हो जाती है, परन्तु मन की क्रिया का अभाव नहीं होता। उस काल में प्राणायाम के व्यापार का भी ज्ञान रहता है कि कितनी देर प्राण का निरोध करना है, या किया है। यह सारा व्यापार मन की चेष्टा के बिना नहीं हो सकता। हाँ, यह बात अवश्य है कि मन अन्य विषयों में नहीं जाता; प्राणायाम के व्यापार में ही लगा रहता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्राणायाम मन को एकाग्र करने में सहकारी होता है और विषयों से वृत्ति हटाने में भी उपयोगी है। शरीर और मन में बल-पराक्रम-शक्ति पैदा करता है और निरोध की ओर भी ले जाता है; परन्तु मन की क्रिया या गति का सर्वथा अभाव नहीं कर सकता। मन तो 'असम्प्रज्ञात समाधि' में जाकर ही निष्क्रिय होगा।

(१५) प्राणायाम बढ़ाने का क्रम

पहले दिन रेचक या पूरक या कुम्भक, जो भी प्राणायाम करना हो और जो विधिपूर्वक गुरुजनों से सीख लिया हो, प्रथम उसको अन्दर या बाहर दस सैकण्ड या पन्द्रह-बीस सैकण्ड या आधा अथवा एक मिनट, जितना सुखपूर्वक रोका जा सके, रोकें। दूसरे दिन दो, तीन या पाँच सैकण्ड के हिसाब से बढ़ाना शुरू करें। इस प्रकार बढ़ाते-बढ़ाते कई मिनट तक प्राण का निरोध किया जा सकता है। यदि केवल मन को ही शान्त, समाहित एवं वृत्तिरहित करना हो, तो किसी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मन्त्र इत्यादि के जप की आवश्यकता नहीं। यदि भगवान् 'ओ३म्' को लक्ष्य में रखकर प्राणायाम करना हो, तब उसके परम-पावन मुख्य मन्त्र प्रणव 'ओ३म्' का जप मन से करते रहें।

यह प्राणायाम शरीर को नीरोग और मन को समाहित करने में अत्यन्त सहकारी होता है। इसके सम्बन्ध में यह श्लोक है—

प्राणायामात् पुष्टगात्रस्य बुद्धितेजोयशोबलम्।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्मात् प्राणायाममाचरेत्॥

"प्राणायाम से शरीर की पुष्टि होती है। बुद्धि, तेज, यश और बल वृद्धि को प्राप्त होते हैं, इसलिए प्राणायाम अवश्य करना चाहिए।"

(१६) प्रत्याहार की सिद्धि

प्रत्याहार के विषय में पहले भी लिखा जा चुका है। वैसे तो तीन मिनट के निरोध में प्राणायाम की सिद्धि मानी जाती है और दस मिनट तक प्राण का निरोध हो जाने से मन निरुद्ध हो जाता है तथा दस इन्द्रियों के विषयों से मन को हटाकर, इसे अपने स्वरूप में स्थिर कर लेना प्रत्याहार है।

इन्द्रियों के दस विषय ये हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वचन, आदान, प्रत्यादान, गमनागमन इत्यादिक कर्मेन्द्रियों के विषय हैं।

मन के विषय ये हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, संशय, प्रमाद, भ्रान्ति, विचिकित्सा, विषाद, शोक इत्यादि।

इन सब विषयों से मन का निरोध करके मन को मन के स्वरूप में दस मिनट तक जो स्थिर करना है, वह प्रत्याहार की अवस्था होती है। प्रत्याहार के सिद्ध होने पर अभ्यासी का ग्यारह इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है।

पतञ्जलि ऋषि के सिद्धान्त के अनुसार तो प्रत्याहार योग के बाह्य अङ्गों में से है; याज्ञवल्क्य के सिद्धान्त के अनुसार आभ्यन्तर अंगों में से है। याज्ञवल्क्य जी ने पहले चार अंगों—यम, नियम, आसन, प्राणा-याम—को ही बाह्य अंग माना है और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

समाधि को आभ्यन्तर अंग माना है। प्रत्याहार में पूर्ण स्थिति प्राप्त होने पर अभ्यासी धारणा का अधिकारी बनता है।

(१७) धारणा कैसे करें ?

धारणा दो प्रकार की है—बाह्य और आभ्यन्तरिक। बाह्य—कोई पदार्थ जैसे 'ओ३म्' अक्षर अथवा गायत्री मन्त्र आदि बाह्य वस्तु। आभ्यन्तरिक –मूलाधार, नाभि-देश, हृदय-देश, त्रिकुटि, ब्रह्मरन्ध्र।

महर्षि पतञ्जलि ने धारणा का लक्षण यह किया है—

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

"चित्त को बाह्य या अभ्यन्तर देश में जो समाहित करना है, वह धारणा है।"

यदि यह समाहितता दो घण्टे निरन्तर बनी रहे, अर्थात् जिस वस्तु पर धारणा की गई है, उसके सिवाय और संकल्प-विकल्प पैदा न हों और चित्त लगाकर दो घण्टे तक उसी वस्तु में स्थिर बना रहे, तो धारणा की परिपक्व अवस्था होती है। योगी का उद्देश्य समाधि में पहुँचने का है, अतः यह धारणा 'समाधि' का प्रथम द्वार है।

अभ्यासी को चाहिए कि आसन-पर स्थिर होकर, जिसका उसे कम-से-कम दो घण्टे का अभ्यास हो चुका हो, उस पर शान्त भाव से अडोल बैठ जाए। फिर अपने मन को सब ओर से शान्त बनाकर, सब प्रकार के विचारों को त्यागकर, सब संकल्पों से रहित होकर, मन से मूलाधार मे प्रवेश करे।

गुदा और उपस्थ के मध्य में, मेरु-दण्ड के अग्र भाग में जो स्थान है, उसे मूलाधार कहते हैं। इस स्थान में 'अपान प्राण' का मुख्य केन्द्र (प्रधान कार्यालय) है। यहाँ रहकर अपान पाँव के अंगुष्ठ से लेकर नाभि तक अपने व्यापार को करता है। इसी मूलाधार के स्थान में अव्यक्त कुण्डलिनी नाम की शक्ति है और यहाँ से ही सुषुम्णा नाम की नाड़ी प्रारम्भ होती है। इसी सुषुम्णा के मध्य में चित्रा नाड़ी है। इसके मध्य में ब्रह्म नाम की नाड़ी है। इसी सुषुम्णा के वाम तथा दक्षिण भाग में इडा, पिंगला नाम की नाड़ियाँ हैं। और भी कई-एक मुख्य

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

नाड़ियाँ यहाँ से प्रारम्भ होकर, नीचे तथा ऊपर के भाग में जाती हैं, परन्तु इनमें मुख्य सथा विशेष रूप से सुषुम्णा ही का स्थान है, क्योंकि सुषुम्णा से ही सारे संसार में ज्ञान का संचार होता है, अतः इस सुषुम्णा से सहस्रों नाड़ियाँ सारे शरीर में ज्ञान का संचार करती हैं।

जब अभ्यासी अपने मन द्वारा इस मूलाधार में अभ्यास आरम्भ करता है और मन से बार-बार यहाँ ध्यान जमाता है, तो अपान प्राण तथा मन के संयोग से दिव्य शक्ति के रूप में यह कुण्डलिनी नाम की दिव्य ज्योति प्रकट होती है और सुषुम्णा के द्वार से ऊर्ध्व-गमन करती है। यह सुषुम्णा मेरुदण्ड के मध्य भाग से ऊपर को ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँची हुई है। प्रत्येक चक्र में इसका स्थान नाड़ियों के बन्धन से कुछ बन्द-सा रहता है। यह कुण्डलिनी शक्ति दिव्य ज्योति के रूप में उत्पन्न होकर चक्रों के सारे द्वार खोलती-सी चली जाती है। जैसे रबड़ की सिकुड़ी हुई नली में वायु भर दें, तो वह उसे खोलती चली जाती है, इसी प्रकार यह दिव्य ज्योति भी सारे चक्रों के बन्धकों को खोलती हुई, सब चक्रों का दर्शन कराती चली जाती है।

हमारे अनुभव में ये चक्र केवल नाड़ियों ही के पुञ्ज नहीं हैं अपितु एक प्रकार के दिव्य प्रकाश ही के मण्डल हैं। कई-एक आचार्यों का सिद्धान्त है कि यह कुण्डलिनी शक्ति सर्पाकार की एक नाड़ी है, जो कि प्राणायाम, मुद्रा, ध्यानादि से जागरित होकर, ऊर्ध्व-गमन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक जा पहुँचती है। परन्तु हमारा ऐसा अनुभव है कि अपान प्राण और मन के संयोग से एक दिव्य प्रकाश इस मूलाधार में उत्पन्न होकर आभ्यन्तरिक-यावत् शरीर को प्रकाशित-सा कर देता है, तब बहुत-से अभ्यासियों को कम्पन, भय इत्यादि भी होने लगते हैं, परन्तु वे कुछ दिनों के अभ्यास से दूर हो जाते हैं।

बहुत-से अभ्यासियों को ऐसा भी होता है कि यह ज्योति मूलाधार ही को प्रकाशित करके यथावत् दर्शन करा देती है। परन्तु जब बार-बार तीव्र संवेग से अभ्यासी मूलाधार में अभ्यास करता है, तो यह दिव्य ज्योति ऊर्ध्व-गमन करके मूलाधार के ऊपर के द्वार को खोलकर स्वाधिष्ठान में प्रवेश कर जाती है। किसी-किसी बुद्धिमान्, निष्ठावान्,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
सूक्ष्म मेधावाले तीव्र अभ्यासी को तो प्रथम दिन ही मूलाधार में यह ज्योति प्रकट होती है, परन्तु मन्दगति और मन्दबुद्धिवाले अभ्यासी को कई-कई दिन या मास या वर्ष भी लग जाते हैं। यदि कोई ऊँचे दर्जे का योगी गुरु मिल जाय, तो पहले ही दिन सारे ही आभ्यन्तरिक पदार्थों का ज्ञान करा देता है। इसके लिए अधिकारी भी पूर्ण जिज्ञासु होना चाहिए। शम, दम, उपरति, तितिक्षासम्पन्न, पूर्ण श्रद्धावान्, वीतराग, आज्ञाकारी, सेवाभाव से युक्त जिज्ञासु होना चाहिए।

मूलाधार में मन को ले-आकर, जब दिव्य ज्योति प्रकट करने का यत्न किया जाता है, तो वह दिव्य ज्योति नाना रूपों में प्रकट होती है। कभी दीप-शिखा के समान, कभी नील, पीत, श्वेत, धुँधली-सी प्रकाशयुक्त ज्योति प्रतीत होनें लगती है। ऐसी ज्योति एक-दो चक्र तक प्रकाशित होकर समाप्त हो जाती है। परन्तु जब अत्यन्त सात्त्विक अवस्था हो और मन भी सत्त्व-प्रधान हो, तो मन के द्वारा पुनः-पुनः ध्यान करने से, वह जो महान् ज्योति प्रकट होती है, वह शुभ्र ज्योति सारे शरीर के नस-नाड़ी, स्थान और पदार्थों तथा अंगों को ब्रह्मरन्ध्र तक प्रकाशित कर देती है। यदि ऊँचे दर्जे का सूक्ष्मदर्शी, तीव्र संवेगी अभ्यासी हो, तो उस काल में शरीर में जितने अतीन्द्रिय व्यष्टि तथा समष्टि पदार्थ हैं, उन सब का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

मूलाधार में ज्योति प्रकट होने के पश्चात् अभ्यासी फिर स्वाधिष्ठान में प्रवेश करे। यह स्थान मूलाधार से लगभग चार अंगुल ऊपर मेरुदण्ड के अग्रभाग में है। रज और वीर्य का भी मुख्य केन्द्र इसी भाग के समीप है। कई-एक आचार्यों का यह भी सिद्धान्त है और कुछ-एक तन्त्रशास्त्रों के माननेवाले यह कहते हैं कि मूलाधार में ही जीवात्मा की मुख्य रूप में अव्यक्त शक्ति है। कुछ यह कहते हैं कि जीवात्मा की स्वाधिष्ठान में मुख्य रूप से अव्यक्त स्थिति है। परन्तु हमारा अनुभव ऐसा है कि ये दोनों ही स्थान जीवात्मा के वास्तविक निवास के स्थान नहीं हैं, क्योंकि इन दोनों स्थानों में ही गर्भ के रूप में बालक का जन्म होता है, इसलिए इन लोगों को भ्रान्ति हो गई कि यही हमारे जीवात्मा का वास्तविक निवास है। हाँ, यदि इसको बालक के जीव का गर्भकाल में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

निवास-स्थान कह दिया जाय, तो हमें कोई आपत्ति नहीं है।

इसके पश्चात् स्वाधिष्ठान में अभ्यास करते हुए, उस दिव्य ज्योति का संचालन करके, ऊर्ध्व-गमन करते हुए मणिपुर-चक्र में ध्यान द्वारा इस दिव्य ज्योति को साथ लेकर प्रवेश करना चाहिए। मणिपुर को ही नाभि-देश भी कहते हैं। यह चक्र भी मेरु-दण्ड के अग्रभाग में है। यहाँ से नीचे 'अपान' प्राण का व्यापार होता है और यहाँ से हृदय तक 'समान' प्राण कार्य करता है। ऊर्ध्व-गमन करनेवाली नाड़ियों के मध्य, अर्थात् नाभि-देश में, जब मनुष्य 'शब्द' का उच्चारण करता है, तो शब्द की उत्पत्ति यहीं से होकर फेफड़ों में से गमन करती हुई कण्ठ में जाकर कुछ व्यक्त-सी होती है। फिर कण्ठ, तालु और जिह्वा के संयोग-विशेष से मुख से उच्चरित होती है। धारणा के द्वारा इन चक्रों का केवल सामान्य ज्ञान ही होता है। इन चक्रों के विषय में आचार्यों के कई-एक सिद्धान्त हैं। कई तो कहते हैं कि ये चक्र कोई पदार्थ नहीं हैं। कई अर्वाचीन आचार्य इन्हें षट्चक्र ही कहते हैं। प्राचीन आचार्य वेद का प्रमाण देकर आठ और दस चक्रों का विधान करते हैं।

अब तक हम मणिपुर-चक्र तक सामान्य रूप से लिख चुके हैं। नाभि तथा हृदय के मध्य में 'समान' प्राण के मध्य में सूर्य और चन्द्र नाम के दो चक्र हैं। आमाशय के कुछ दक्षिण भाग की ओर, जिसे कि पित्ताशय कहते हैं, इस स्थान पर ही सूर्य नाम का चक्र है। प्रायः इसके द्वारा ही भुक्त और पीत पदार्थों का पाक होता है और इसी को प्रायः जठराग्नि के रूप में भी वर्णन करते हैं। इसके वाम पार्श्व की ओर जहाँ कि प्लीहा होती है अर्थात् सूर्य और हृदय-चक्र के बीच में, मनस्-चक्र नाम का चक्र है। बहुत-से लोग इसे चन्द्र-चक्र भी कहते हैं। यहीं से प्रायः रस का विभाग होकर हृदय या अन्य नाड़ियों में जाता है। इसके ऊपर के भाग में अनाहत-चक्र या हृदय-चक्र नाम का एक स्थान है।

अर्वाचीनों ने इन चक्रों की नाना प्रकार की आकृतियाँ भी बनाई हैं और कई दलों का भी निर्माण किया है। उनमें अक्षरों तथा देवताओं का भी कथन किया है।

हृदय-चक्र के अन्दर हमारे अपने विचार और अनुभव में छः पदार्थों

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

का मुख्य स्थान है। इसका वर्णन समाधि के अंग में किया जायेगा। धारणा द्वारा केवल पदार्थ के बाह्य स्वरूप ही का कुछ दिग्दर्शन होता है। इसके ऊपर कण्ठ-देश में पहुँचकर नाभि से उत्पन्न होकर शब्द कुछ व्यक्त होता है। ऋषभ, गन्धारादि स्वरों का मुख्य केन्द्र विशुद्ध चक्र ही में है।

इसके ऊपर त्रिकुटि या भ्रूमध्य में आज्ञा-चक्र है। बहुत-से अभ्यासी जिनका प्रथम मूलाधार में मन प्रवेश नहीं करता, उनको प्रथम इस आज्ञा-चक्र में अभ्यास करना चाहिए। यहाँ प्रथम दिन ही या कुछ दिनों के अभ्यास से नाना प्रकार के प्रकाश उत्पन्न होने लगते हैं। इन प्रकाशों में भी नाना रंग पैदा हुआ करते हैं—कभी नील, पीत, कभी श्वेत। कभी-कभी एक ही रंग का प्रकाश बहुत देर तक बना रहता है और कभी क्षण-क्षण में परिवर्तन होता रहता है। जब अभ्यासी को यहाँ निरन्तर ज्योति प्रकट होने लगे, तो ध्यान द्वारा इस ज्योति को ले-जाकर मूलाधार में मन-सहित प्रवेश करे और वहाँ निरन्तर ध्यान करते हुए, दिव्य ज्योति को प्रकट करे। त्रिकुटि में अभ्यास करने से ज्योति उत्पन्न होकर शीघ्र मूलाधार में प्रविष्ट हो जाती है और फिर क्रम से चक्रों का ज्ञान होता चला जाता है।

इस आज्ञा-चक्र में ही मूलाधार से उत्पन्न हुई सुषुम्णा, इडा, पिंगला नाड़ियाँ आकर सम्बन्धित होती हैं। जहाँ इनका संगम है, उसी स्थान को भ्रमरगुहा का नाम दिया गया है। इसे त्रिवेणी भी कहा गया है, जैसे बाह्य लोक में गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम को त्रिवेणी कहते हैं। योगी लोग ध्यानयोग द्वारा इसी त्रिवेणी में स्नान करते हैं। ये तीनों नाड़ियाँ फिर यहाँ से कुछ विभक्त होकर ब्रह्मरन्ध्र में जाकर समाप्त हो जाती हैं। त्रिकुटि से सुषुम्णा के दो विभाग हो जाते हैं। एक पृष्ठ भाग से होता हुआ लघु मस्तिष्क की ओर चला जाता है और दूसरा अग्र-भाग से जाता हुआ ब्रह्मरन्ध्र में समाप्त हो जाता है।

इस आज्ञा-चक्र के ऊपर कुछ ही समीप ललाट नाम का चक्र है। यह चक्र साफ प्लेट-जैसा है। ब्रह्मरन्ध्र में जो मन, बुद्धि आदि इन्द्रियों की ज्योतियाँ हैं, वे इसी का भेदन करके बाहर फैलती हैं। इस ललाट-चक्र

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र नाम का चक्र है। इसी को सहस्रार या दशम द्वार भी कहते हैं। यह ब्रह्मरन्ध्र ही वह स्थान है जो सिर के ऊपर मध्य में एक पोल-सा होता है। दोनों कनपटियों के दो अंगुल अन्दर तथा तालु-भाग के लगभग दो अंगुल नीचे, यह ब्रह्मरन्ध्र नाम का चक्र है।

हमारे अपने विचार और अनुभव में विज्ञान-केन्द्र मुख्य रूप से दो ही हैं—ब्रह्मरन्ध्र और हृदय-देश। क्योंकि यह धारणा का विषय चल रहा है, यह अभ्यास बाह्य और आभ्यन्तर विषय पर किया जाता है। वास्तव में बाह्य और आभ्यन्तर पदार्थों के विशेष रूप से ज्ञान का विषय समाधि ही है, परन्तु सामान्य रूप से धारणा द्वारा भी बाह्य और आभ्यंतर पदार्थों का ज्ञान होता है। जिस प्रकार आभ्यन्तर दश चक्रों पर अभ्यासी धारणा को परिपक्व करता है, उसी प्रकार दश प्रकार के प्राणों पर भी धारणा का अभ्यास करना चाहिए।

जैसे कि प्रथम मूलाधार में अपान प्राण का केन्द्र बतलाया था तो इस अपान प्राण पर भी धारणा का अभ्यास करना चाहिए। नाभि से लेकर पाँव के अंगुष्ठ तक, यह अपान अपना कार्य करता है। गुदा तथा लिंग द्वारा मल-मूत्रादि का फेंकना अथवा रज और वीर्य का पतन करना, इस अपान का कार्य है। गर्भ का पालन-पोषण तथा उदर से बाहर लाना भी, इसी अपान का कार्य है। इसमें पृथिवी का भाग विशेष है, इसीलिए इसमें गुरुत्व भी है और किंचित् कृष्ण वर्ण है। हमारे अनुभव में प्राण दो प्रकार का है—एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म। स्थूल वह है, जो भौतिक वायु के रूप में शरीर के दश केन्द्रों में अपना कर्म-व्यापार करता है। इसी स्थूल प्राण पर ही अभ्यासी को धारणा करनी चाहिए। सूक्ष्म प्राण का अन्तःकरण के साथ विशेष सम्बन्ध होने से, समाधि में उसका वर्णन किया जायेगा।

नाभि से लेकर हृदय-पर्यन्त 'समान' प्राण का व्यापार होता है। यह 'समान' प्राण ही नाभि से हृदय तक कर्म करते हुए भुक्त और पीत अन्न एवं जल इत्यादि का पाक इसमें करा, रस को विभक्त करके, हृदय-देश में रस से रुधिर बनानें के लिए गमन कराता है अथवा सब नाड़ियों में रस को पहुंचाता है और शेष भाग, अर्थात् मलादि को, नीचे अपान

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राण को समर्पण कर देता है।

प्राण में जलतत्त्व विशेष है और यह किंचित् शुक्ल वर्ण का है। हृदय से कण्ठ-पर्यन्त प्राणवायु रहता है। क्षुधा एवं प्यास लगाना इसी प्राण का काम है, क्योंकि इसमें अग्नि-तत्त्व का विशेष अंश है। यह किंचित् पीत वर्ण वाला है। श्वास-प्रश्वास की गति भी प्राण ही कराता है और हृदय के कार्य भी यह कराता है। हमारे अपने विचार और अनुभव में शरीर में यह भौतिक प्राण ऐसा ही है, जैसे एक कमरे में भौतिक वायु या आकाश-मण्डल में वायु। जैसे कमरे के वायु से हम जीवन लेते हैं, वैसे ही शरीर में भौतिक वायु-रूपी प्राण से जीवन धारण करते हैं।

इससे ऊपर कण्ठ-देश में 'उदान' प्राण का मुख्य केन्द्र है। यह उदान प्राण मुख द्वारा जो अन्न एवं जल ग्रहण किया जाता है, उसे नीचे भेजता है या वमन-रूप में बाहर फेंकता है। कण्ठ-देश में शब्दों के उच्चारण में सहकारी होता है। इसमें वायु का अंश विशेष है। यह किंचित् नील वर्ण वाला है।

पाँचवाँ प्राण 'व्यान' है। यह सारे शरीर में व्यापक रूप से रहता है। रक्त और ज्ञानादि का संचार भी यही करता है। दूसरे प्राणों के साथ सहकारी होकर, उनमें शक्ति-सम्पादन करता है। इसमें आकाश-तत्त्व का अंश विशेष है।

इसी प्रकार जो पाँच उपप्राण—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय हैं, इनके स्थान में भी धारणा का अभ्यास करना चाहिए। इनमें से चार का स्थान तो कण्ठ से ऊपर ही है, परन्तु व्यान की तरह धनञ्जय सारे शरीर में रहता है। नाग-उपप्राण उद्गार (डकार) को पैदा करता है। कूर्म नेत्रों को खोलता तथा बन्द करता है। कृकल छींक लाता है। देवदत्त जँभाई को लाता है और धनञ्जय मरने के पश्चात् शरीर को फुला देता है। इस प्रकार इन दशों प्राणों को जानकर, अभ्यासी को इनके केन्द्रों में धारणा का अभ्यास करना चाहिए। तब इन प्राणों का सामान्य ज्ञान हो जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

(१८) 'ध्यान' की बात

इसके पश्चात् ध्यान है। योगदर्शनकार ने ध्यान का यह लक्षण किया है—

तत्र प्रत्येकतानता ध्यानम्।

"उस धारणा के देश में (ध्येय जो अवलम्बन विषय है) निरन्तर लगातार मन का लगे रहना ध्यान कहलाता है।" क्योंकि, यह धारणा को भी एकतानता-रूप से बनाये रखता है। यह ध्यान जैसे धारणा का सहकारी है, उसी प्रकार यह समाधि का भी सहकारी है, क्योंकि समाधि को निरन्तर एकातानता-रूप धाराप्रवाह से बनाये रखना भी इसी का काम है।

ज्यों-ज्यों ध्यान की अवस्था परिपक्व होती जाती है, अभ्यासी उसमें सफल होता जाता है। अभ्यासी को चाहिए कि वह धारणा के सारे केन्द्रों अर्थात् दश प्रकार के चक्रों और दश प्रकार के प्राणों पर ध्यान को दृढ़ करे, क्योंकि धारणा के स्थान में ही चित्त का एकतान (दश-बारह घण्टे तक) बने रहना या लगे रहना, ध्यान की परिपक्व अवस्था होती है। ऐसा होने पर फिर अभ्यासी समाधि में प्रवेश करने का अधिकारी है।

(१९) समाधि

धारणा और ध्यान में अभी विशेष ज्ञान का ऐसा कोई विषय नहीं आया, जो आत्म-ज्ञान का, मोक्ष का हेतु हो। समाधि ही एक ऐसी अवस्था है, जो विशेष रूप से पदार्थों के साक्षात्कार का हेतु होती है। विद्वानों के उपदेश तथा शास्त्रज्ञान से केवल योगोक्त पदार्थों का सामान्य ज्ञान ही होता है, परन्तु समाधि के द्वारा तो विशेष ज्ञान प्राप्त होता है।

समाधि के सम्बन्ध में आचार्यों में मतभेद है। कोई एक प्रकार की, कोई दो, कोई तीन और कोई चार प्रकार की समाधि मानते हैं। कोई इसके छः और आठ प्रकार बतलाते हैं।

योग के सिद्धान्त में प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा है। सत्त्व, रज

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तम की साम्य-अवस्था को प्रकृति कहते हैं। जब प्रकृति और उसके कार्य-विषयक समाधि द्वारा विज्ञान प्राप्त करना होगा, तो वह भी त्रिगुणात्मक विज्ञान ही होगा। चित्त भी त्रिगुणात्मक है, अतएव यह चित्त अपने कार्य और कारण, जो त्रिगुणात्मक पदार्थ हैं, उन्हीं को प्रत्यक्ष कराने में सहायक हो सकता है, साक्षात् रूप से चेतन को नहीं। अतः चित्तजन्य समाधि भी त्रिगुणात्मक ही हो सकती है। जब अभ्यासी ध्यान द्वारा समाधि में प्रवेश करता है, तो उस समय जो गुण प्रधान होगा, उसी में चित्त की परिस्थिति होगी, जो अभ्यासी का निश्चित किया हुआ हो।

तमःप्रधान समाधि

यदि उस समय चित्त में 'तम' प्रधान हो तो चित्त उस तम ही में प्रवेश कर जड़वत् या शून्य-सा ही हो जायेगा और उस समय चित्त की जो स्थिति जितने काल तक (दो, चार, दश, बारह घण्टे, एक दिन, दो-चार दिन या इससे भी अधिक दिन) रहेगी, उस काल में केवल शून्यता ही वहाँ आलम्बन होगी और अन्य कुछ भी संवेदन नहीं होगा, जैसे कि सात्त्विक, राजस और तामस निद्रा में होता है। ऐसी समाधि से व्युत्थान के पश्चात् सिवाय शून्यता या जड़ता के किसी भी प्रकार का अनुमान उस काल का नहीं होता, जैसे निद्रा के पश्चात् होता है। इसी को बहुत-से अभ्यासी जड़-समाधि, शून्य-समाधि, निर्विकल्प अथवा निर्जीव समाधि का नाम देते हैं।

आप यह शंका कर सकते हैं कि समाधि तो सत्त्व-प्रधान ही होती है। आपकी यह शंका ठीक है। हम भी ऐसा ही मानते हैं कि समाधि सत्त्व-प्रधान होती है। परन्तु तमः और रजःप्रधान भी समाधि हो सकती है। जब चित्त को समाहित ही करना है, तो किसी भी पदार्थ या गुण अथवा अवस्था में उसे समाहित किया जा सकता है। जब आप उसे सत्त्वगुण-प्रधान में समाहित करते हैं, तो उसे तमःप्रधान तथा रजःप्रधान में भी तो समाहित कर सकते हैं। जब योगी का चित्त पर पूर्ण अधिकार हो जाता है, तो वह यदि तमःप्रधान हो, तो उसका परिवर्तन करके

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उसके स्थान पर सत्त्व या रज को प्रधान बनाकर, उसमें भी प्रवेश कर सकता है।

जैसे एक अभ्यासी किसी निश्चित समय में नित्यप्रति अभ्यास करता है और चित्त में भोग देने के लिए गुणों का परिवर्तन होता है, तो उस समय जो गुण प्रधान होगा, उसी में प्रवेश करके चित्त स्थिर हो जायेगा। जैसे एक मनुष्य को जिस काम को करने की नित्य-प्रति आदत है, वह प्रातः उठते ही उसमें प्रवृत्त हो जाता है, इसी प्रकार अभ्यासी को नित्य-प्रति अभ्यास में बैठने की आदत है, परन्तु गुणों का परिवर्तन करने की योग्यता या शक्ति अभी प्राप्त नहीं हुई या उन पर अभी पूर्ण अधिकार नहीं हुआ है, तो उस समय जो भी गुण प्रधान होगा, उसी में उसकी समाधि हो जायेगी ; क्योंकि अकेला कोई भी गुण किसी कार्य का आरम्भक नहीं होता। अतएव गौण रूप से वहाँ सत्त्व और रज सहकारी रहेंगे। योग के आचार्यों ने—

स्थितिशीलं तमः

तम का अर्थ किया है। वहाँ मुख्य रूप से तमः ही प्रधान रहता है। इसलिए तमः ही की अनुभूति होगी, जो कि निद्रावृत्ति से एक विलक्षण अवस्था है।

रजःप्रधान समाधि

जिस समय अभ्यासी चित्त को समाहित करके रजःप्रधान समाधि में प्रवेश करता है, तो जिस पदार्थ का ध्येय रूप से लक्ष्य बनाया होता है, ध्यान द्वारा जब चित्त के साथ उसका सम्बन्ध-विशेष होता है, तो उससे पदार्थ-सम्बन्धी ही विज्ञान उत्पन्न होता है। यह किस प्रकार का पदार्थ है ? कितना लम्बा, चौड़ा, तिकोन, अणु या विभु, स्थिर या गतिशील, किस प्रकार का रंग, रूप, कहां इसकी स्थिति है, मध्यम परिणामी है या नहीं ? तब उसी पदार्थ-सम्बन्धी ऊहापोह होता है। उस पदार्थ के अतिरिक्त मन अन्यत्र नहीं जाता, क्योंकि यह रजःप्रधान समाधि है।

क्रियाशीलं रजः

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रजोगुण में क्रिया ही प्रधान है। यह रजस् का लक्षण किया गया है। यदि इसी को सम्प्रज्ञात समाधि कह दिया जाय, तो कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि सम्प्रज्ञात सविकल्प समाधि में शब्द, अर्थ और ज्ञान बना रहता है, अतएव इस रजस्-प्रधान में भी क्रिया ही मुख्य है और वह क्रिया पदार्थ के प्रयत्न कराने में मुख्य रहती है।

सत्त्वप्रधात समाधि

तीसरी समाधि सत्त्वप्रधान है। इसमें केवल ध्येयाकार वृत्ति रहती है। पदार्थ है। 'अस्ति-अस्ति' (है-है)—इस प्रकार का ध्यान बना रहता है। उस ध्येयाकार वस्तु में मन के निरन्तर लगे रहने से विशेष आनन्द की उपलब्धि होतो है। इस अवस्था में पदार्थ-सम्बन्धी विज्ञान में किसी प्रकार का तर्क-वितर्क नहीं होता। केवल ध्येयाकार वृत्ति ही बनी रहती है। यहाँ आनन्द की जो उपलब्धि होती है, उसी को उपनिषद् ने यों लिखा है—

न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा।
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

"उस आनन्द का वाणी वर्णन नहीं कर सकती, क्योंकि उसे स्वयं अन्तःकरण से अनुभव किया जाता है।"

ऐसा आनन्द सत्त्वप्रधान में ही होता है।

ब्रह्मरन्ध्र में

पहले लिखा जा चुका है कि हमारे अनुभव में ज्ञान के दो ही मुख्य केन्द्र हैं—ब्रह्मरन्ध्र और हृदयदेश। जब अभ्यासी धारणा और ध्यान के द्वारा दस चक्रों और दस प्राणों के विषय में सामान्य ज्ञान प्राप्त कर चुका हो, तब उसको ध्यान के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर वहाँ जो पदार्थ हैं, उनके प्रत्यक्ष विशेष ज्ञान के लिए अभ्यास करना चाहिए।

'ब्रह्मरन्ध्र' त्रिकुटि और ललाट के ऊपरी भाग में है। जिस प्रकार रबड़ की गेंद में पोल होता है, उसी प्रकार का ब्रह्मरन्ध्र पोलयुक्त और तरल-सा भाग है। ज्ञान-कर्म-इन्द्रियाँ जो कि बाह्य रूप से हैं, जैसे नेत्र,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

नेत्र के जो बाहर के गोलक हैं—इनसे निस्सरण होकर ज्ञानवाहक नाड़ियाँ ब्रह्मरन्ध्र के साथ जाकर सम्बन्धित हुई-हुई हैं। इसी प्रकार जो अन्य ज्ञान या स्थूल कर्म-इन्द्रियाँ हैं, इन सबकी ज्ञानवाहक नाड़ियाँ ब्रह्मरन्ध्र से सम्बन्धित हैं। ब्रह्मरन्ध्र के अन्दर जो आकाश-मण्डल है, कई विद्वान् आचार्य उसी आकाश को हृदयाकाश भी कहते हैं, परन्तु हमारे अनुभव में हृदयाकाश अनाहत-चक्र में है। हमारा यह भी विचार है कि सूक्ष्म-शरीर इस ब्रह्मरन्ध्र ही में विद्यमान रहता है, जो कि १७ तत्त्वों का है। यथा—

५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ तन्मात्रा, १ मन, १ बुद्धि।

इस ब्रह्मरन्ध्र-रूपी आकाश-मण्डल के अन्दर मध्य में बुद्धि का मण्डल विस्तृत रूप से रहता है और इसी मण्डल में गतिमान् मन सूक्ष्म रूप से रहता है। जब इस मन का सम्बन्ध ज्ञान तथा कर्म-इन्द्रियों के मण्डल के साथ होता है, तो उनके विषयों से प्रतिबिम्बित हो करके, इसमें संकोच तथा विकासरूपी क्रिया होती है। यह क्रिया विद्युत् की गति से भी सहस्रों गुणा तीव्र गतिवाली होती है। इस बुद्धि तथा मन के बाह्य किनारों पर ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियों के छोटे-छोटे मण्डल हैं। ये सूक्ष्म इन्द्रियों के मण्डल ही लिंग या सूक्ष्म शरीर के साथ सम्बन्धित होकर मृत्यु के पश्चात् गमन करते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के इन मण्डलों के अग्र-भाग में पञ्चतन्मात्रा का मण्डल रहता है, जो इन दसों इन्द्रियों तथा मन-बुद्धि के मण्डलों को बाह्य रूप से आच्छादित करके रहता है, जैसे स्थूल शरीर को त्वचा। यही लिंग-शरीर कहलाता है। जिस प्रकार स्थूल पंचभूतों से यह हमारा शरीर अन्नमय कोश बना हुआ है, उसी प्रकार सूक्ष्म पंच-तन्मात्राओं से यह लिंग-शरीर बना हुआ है और सूक्ष्म-पञ्च-तन्मात्रा ज्ञान-कर्म-इन्द्रिय तथा मन, बुद्धि के समूह को ढाँप करके रखता है।

बहुत-से विद्वानों का यह कथन है कि ब्रह्मरन्ध्र में जो बुद्धि का मण्डल है यही आत्मा है, क्योंकि मन, कर्म और ज्ञानेन्द्रियों के साथ जो व्यापार करता है, उसका निर्णय इस बुद्धि-मण्डल में ही होता है। इसीलिए यह भ्रान्ति हो जाती है कि 'यह बुद्धि ही जीवात्मा है और यही

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

भोक्ता-कर्त्ता है।' बाह्य स्थूल इन्द्रियों के जो गोलक हैं, इनके प्रति सूक्ष्म इन्द्रियाँ या इनके मण्डल करण हैं। इन सूक्ष्म इन्द्रियों के प्रति मन करण रहता है, क्योंकि ब्रह्मरन्ध्र में बुद्धि का निश्चयात्मक व्यापार इस मन-रूपी करण के द्वारा होता है। इसलिए कुछ महानुभावों ने इस बुद्धि को ही कर्त्ता, भोक्ता, आत्मा मान लिया है, परन्तु इस बुद्धि का भी करण मौजूद है, जिसका वर्णन हृदय-देश में किया जायेगा।

जब हम स्थूल नेत्र से किसी बाह्य पदार्थ को देखते हैं, तो बाह्य स्थूल रूप का नेत्र-पटल पर आभास पड़ता है। इसके पश्चात् ज्ञानवाहक नाड़ियों में, जो इसके पृष्ठ-भाग से सम्बन्धित हैं, गति होकर सूक्ष्म नेत्र-इन्द्रियों पर जाकर वह रूप सूक्ष्म नेत्र के ऊपर प्रतिबिम्बित होता है। तब उस सूक्ष्म नेत्र के मण्डल में गति या क्रिया होने लगती है। मन इतना सावधान रहता है कि जिन इन्द्रियों के मण्डल से उसको रूप, रस, गन्ध आदि का सन्देश पहुँचाता है, वह उमसे तत्काल प्रतिबिम्बित होकर बुद्धि के मण्डल से उस पदार्थ के ज्ञान का निर्णय कराने के लिए बहुत ही तीव्र रूप से लहरों या तरंगों के रूप में गति करने लगता है। उस समय मन का जो व्यापार बुद्धि के मण्डल में होता है, उसका ध्यान करना या समझना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

हमारे अपने अनुभव में इन १७ पदार्थों की आकृति, रंग, रूप, व्यापार भिन्न-भिन्न हैं। अभ्यासी के लिए इस भिन्नता को ब्रह्मरन्ध्र में समझना बहुत कठिन होता है। बिना सच्चे गुरु वा आचार्य के ज्ञान कराये उस अभ्यासी को इनके समझने में भ्रान्ति-सी हो जाती है, क्योंकि यह सारा अतीन्द्रिय विज्ञान है। गुरु जब प्रत्येक मण्डल या पदार्थ का ज्ञान करा देता है, तभी अभ्यासी उसका साक्षात्कार कर सकता है।

यद्यपि पहले यह लिखा जा चुका है कि शास्त्र और गुरु द्वारा सामान्य ज्ञान ही होता है, परन्तु गुरु अपने मनोबल से प्रभावित करके और उसके मन या बुद्धि की गति कराकर, उस पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान कराने में सहकारी अवश्य होता है। जैसे कि एक सेनानायक सहस्रों सैनिकों का नियन्त्रण करता है, इसी प्रकार योगी गुरु भी मन, इन्द्रिय

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तथा बुद्धि का नियन्त्रण करके पदार्थ के साथ सम्बन्धित कराकर, उसका प्रत्यक्ष ज्ञान कराने में सहकारी होता है।

ब्रह्मरन्ध्र के पदार्थों का वर्णन लेखनी के द्वारा नहीं हो सकता। यह तो स्वयं ही अनुभव करने या कराने योग्य है और गुरु द्वारा ही जानने योग्य है। जैसे पाठशाला के विद्यार्थी अध्यापक के पास निरन्तर कई घण्टे प्रतिदिन रहकर पढ़ते हैं, तब जाकर कई वर्षों में लौकिक विद्या का ज्ञान होता है या शास्त्री, आचार्य, बी० ए०, एम० ए० बनते हैं, उसी प्रकार दीर्घकालपर्यंन्त और निरन्तर किसी उत्तम विद्वान् योगी के समीप रहकर, इस अध्यात्म-विद्या को प्राप्त करना चाहिए, जैसे कि इन्द्र ने प्रजापति के चरणों में रहकर इस ब्रह्म-विद्या को प्राप्त किया था।

प्रकृति-विज्ञान

अब पहले प्रकृति के सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक है; क्योंकि अभ्यासी को चाहिए कि वह पहले प्रकृति के उन पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर ले, जिसका साक्षात्कार करके उसे मोक्ष प्राप्त करना है। अतएव उन पदार्थों का सामान्य रूप से यहाँ उल्लेख करते हैं कि अभ्यासी को क्रमपूर्वक समाधिकाल में पदार्थों के साक्षात्कार करने में सुभीता रहे। ये ही पदार्थ जीवन के सम्बन्ध का हेतु हैं। इनका तत्त्वज्ञान प्राप्त करके इनसे परम वैराग्य होना ही मोक्ष है।

योगाचार्यों ने सत्त्व, रज, तम की साम्य-अवस्था को प्रकृति के नाम से कथन किया है। यह साम्य-अवस्था प्रलयकाल में ही होती है। प्रलय-काल के पश्चात् जिस समय सृष्टि का आरम्भ होता है, ब्रह्म के सम्बन्ध-विशेष से इस प्रलय-काल की साम्य-अवस्था की प्रकृति में सर्वप्रथम जो परिणाम उत्पन्न होता है, उस उत्पन्न हुए पदार्थ का नाम महत्तत्त्व है। इसी को समष्टि महत्तत्त्व भी कहते हैं। इस त्रिगुणात्मक प्रकृति से जो भी पदार्थ उत्पन्न होंगे, वे त्रिगुणात्मक महत्तत्त्व का उपादान कारण होने से त्रिगुणात्मक प्रकृति ही होंगे। अतः यह प्रकृति का सर्वप्रथम विकार या कार्य महत्तत्त्व है। यह भी सत्त्व, रज़, तम भेद से तीन प्रकार का है—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

(१) सत्त्व-प्रधान महत्तत्त्व,
(२) रजस्-प्रधान महत्तत्त्व, और
(३) तमस्-प्रधान महत्तत्त्व।

ब्रह्म इसी सत्त्व-प्रधान महत्तत्त्व को ग्रहण करके इसके द्वारा सृष्टि का सृजन करता है और रजस्-प्रधान जो महत्तत्त्व हैं, इससे समष्टि जीवों के अन्तःकरण की उत्पत्ति होती है। तमस्-प्रधान महत्तत्त्व से समष्टि अहंकार की उत्पत्ति होती है। सत्त्व और रजस्-प्रधान अहंकार से समष्टि मन की उत्पत्ति होती है। सत्त्व-प्रधान अहंकार से समष्टि ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। केवल रजस्-प्रधान अहंकार से समष्टि-कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। तमस्-प्रधान अहंकार से पञ्च-तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है।

सत्त्व-प्रधान तन्मात्राओं से लिंग-शरीर की उत्पत्ति होती है अर्थात् मन, बुद्धि, ज्ञान और कर्म-इन्द्रियों के ऊपर जो कोष हैं और जो इनको संगठित किये हुए हैं, वे सात्त्विक तन्मात्राओं ही के लिंग-शरीर हैं।

सत्त्व-प्रधान तथा रजः-प्रधान तन्मात्राओं से मुक्त आत्मा के सांकल्पिक शरीर का निर्माण होता है, जिसके द्वारा वह मोक्ष में सुख भोगता है अथवा उन देवताओं के शरीर का निर्माण होता है, जो आकाश-मार्ग में गमन करते हैं।

सत्त्व-प्रधान पञ्चभूतों से आदि सृष्टि में अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा, ब्रह्मा आदि ऋषियों का प्रादुर्भाव होता है।

रजस्-प्रधान पञ्चभूतों से पशु, पक्षी इत्यादि जीवों के शरीर की उत्पत्ति होती है।

तमस्-प्रधान पञ्चभूत से पृथिवी आदि लोक-लोकान्तरों की उत्पत्ति होती है।

इस सृष्टि-विज्ञान को भली प्रकार बुद्धिपूर्वक समझ लेना चाहिए और फिर समाधि के द्वारा इसे प्रत्यक्ष करना चाहिए।

ब्रह्मरन्ध्र की ज्योतियाँ

जिस समय अभ्यासी ध्यान के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करता है,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तो ब्रह्मरन्ध्र मे कई प्रकार की ज्योतियाँ भिन्न-भिन्न रङ्ग तथा आकार की निकलती-सी प्रतीत होती हैं या अन्दर ही उनकी गति होती रहती है। कभी-कभी सूर्य के समान आकारवाला प्रकाश का मण्डल-सा चमकता प्रतीत होने लगता है। कभी चन्द्र के प्रकाश का मण्डल-सा और कभी किसी हीरे के समान चमकती हुई ज्योति प्रतीत होने लगती है। कभी-कभी धुँधला-सा प्रकाश सर्वत्र एक-समान प्रतीत होने लगता है और कभी अत्यन्त अन्धकार-सा प्रतीत होने लगता है। ये सब ज्योतियाँ यहाँ मन-रूपी करण के द्वारा देखने में आती हैं। ब्रह्मरन्ध्र के अन्दर जितने भी मन, बुद्धि, इन्द्रियों के ज्योतिर्मय मण्डल हैं, इनका प्रकाश अनुद्भूत प्रकाश है। यह प्रकाश दर्शन का विषय तो होता है, परन्तु स्पर्श या दाह का विषय नहीं होता जैसे कि बाह्य अग्नि, सूर्य और विद्युत् का प्रकाश दाह तथा स्पर्शवाला होता है और साथ ही स्थूल नेत्रों से दर्शन का भी।

इन सब मण्डलों में परस्पर के व्यवहार से भी क्रिया होती है और स्वयं अपनी क्रिया भी रहती है। जैसे पृथिवी सूर्य के इर्द-गिर्द भी चक्कर लगाती है और स्वयं लट्टू की भाँति अपनी परिधि में भी घूमती है. इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ तब तक गतिशील रहता है, जब तक इसका प्रलय नहीं होता। जब ध्यान के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में किसी एक इन्द्रिय के मण्डल पर अभ्यास किया जाता है, तो उस मण्डल का व्यापार या उसका स्वरूप प्रत्यक्ष रूप से प्रतीत होने लगता है। उस समय उस मण्डल में जो व्यापार होता है, लेखनी उसका वर्णन नहीं कर सकती।

जब सूक्ष्म नेत्र-इन्द्रिय के साथ मन का सम्बन्ध होता है तो उस नेत्र-इन्द्रिय में जो गति होती है, वह गति तरलता या जीवन को लिए हुए होती है। जैसे दो प्रकार के विद्युत् का सम्बन्ध होने से एक तीसरी वस्तु उत्पन्न होती है, इसी प्रकार सूक्ष्म नेत्र-इन्द्रिय के सम्बन्ध से दिव्यरूप की अनुभूति होती है। वह रूप उस समय भिन्न-भिन्न आकृतिवाला प्रतीत होने लगता है और प्रतिक्षण परिणत होता रहता है। उस समय सूक्ष्म नेत्र-इन्द्रिय का रूप भी प्रत्यक्ष होता है और

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उसके विषय-रूप तन्मात्रा का भी प्रत्यक्ष रूप से परिणाम अनुभव में आने लगता है।

इसी प्रकार जिस सूक्ष्म-इन्द्रिय के साथ ध्यान द्वारा मन को सम्बंधित करके प्रत्यक्ष रूप से अभ्यासी देखना चाहता है, उस इन्द्रिय तथा उसके विषय का ब्रह्मरन्ध्र में उसे प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। जिस प्रकार सूर्य से प्रकाश-युक्त रश्मियाँ निकलती हुई हमें प्रत्यक्ष होती हैं, उसी प्रकार ज्ञान, कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि के मण्डलों से भी भिन्न-भिन्न अनुद्भूत प्रकाशवाली रश्मियाँ-सी निकलती हुई प्रत्यक्ष रूप से अभ्यासी को दिखाई देने लगती हैं। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय से मन प्रतिबिम्बित होकर बुद्धि के मण्डल में एक विचित्र प्रकार की क्रियावाला हो जाता है। उस समय उसकी गति का वर्णन लेखनी नहीं कर सकती।

जिस प्रकार तालाब के जल में एक पत्थर फेंकने से सहस्रों तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं, उसी प्रकार बुद्धि के मण्डल में जब मन प्रतिबिम्बित होकर क्रिया को प्रारम्भ करता है, तो उसमें भी अनेक सूक्ष्म तरंगें-सी उत्पन्न होकर, उस बुद्धि के मण्डल में मन की संकोच-विकास-पूर्वक तीव्र गति होने लगती है, जिसे कि नोट किया जा सकता है। जिस समय बुद्धि तथा मन का व्यापार होता है, उस समय हृदय में स्थित अन्तःकरण करण होता है और जिस समय इन्द्रियों तथा मन का व्यापार ब्रह्मरंध्र में होता है उस समय ब्रह्मरन्ध्र में स्थित बुद्धि करण होती है।

अभ्यासी को चाहिए कि वह ब्रह्मरन्ध्र में पंच तन्मात्राओं के मण्डल पर पहले अभ्यास करे। तब पंच-तन्मात्राओं का प्रत्यक्ष होता है, जो कि सूक्ष्म इन्द्रियों का विषय है। तत्पश्चात् सूक्ष्म इन्द्रियों के मण्डलों पर क्रमिक-अभ्यास करना चाहिए। तब इन सूक्ष्म इन्द्रियों का ज्ञान होता है। फिर मन के मण्डल पर अभ्यास करने से उसके स्वरूप का ज्ञान होता है। तब बुद्धि के मण्डल पर अभ्यास करना चाहिए ताकि उसका भी प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाये।

जब मण्डल के प्रत्यक्ष करने के लिए अभ्यासी ध्यान द्वारा समाधि

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

की प्रथम अवस्था में प्रवेश करता है, तो उस समय सविकल्प अवस्था होती है। उस समय शब्द, शब्द-अर्थ और ज्ञान का भान होता है। ध्याता, ध्यान और ध्येय में तीनों बने रहते हैं। इस सविकल्प अवस्था ही में पदार्थ का ज्ञान क्रमपूर्वक होता रहता है।

जिस समय ज्ञान होते-होते केवल ध्येयाकार-वृत्ति हो जाती है तो उस समय 'अस्ति, अस्ति' (है, है) यही भान होता रहता है। ध्याता अपने-आपको भूल-सा जाता है; केवल ध्येय ही की प्रतीति होती रहती है।

जिस समय अभ्यासी इन सूक्ष्म मण्डलों पर अभ्यास करता है, तो ये अपने दिव्य स्वरूप को प्रत्यक्ष रूप से पकट करने लगते हैं, जैसे श्रोत्र-इन्द्रिय दिव्य शब्द को, स्पर्श-इन्द्रिय दिव्य स्पर्श को, रसना-इन्द्रिय दिव्य रस को और घ्राण-इन्द्रिय दिव्य गन्ध को। परन्तु स्थूल इन्द्रियों के जो बाहर के गोलक हैं, वे स्थूल शब्द, स्पर्श रूप इत्यादि के ज्ञान के हेतु होते हैं और सूक्ष्म इन्द्रियाँ दिव्य शब्द, स्पर्श आदि के ज्ञान की बोधक होती हैं। वैसे स्वयं मन की अपनी गति तो कभी बन्द नहीं होती, परन्तु जब वह दूसरे पदार्थ के साथ सम्बन्धित होता है, तब उसमें संकोच-विकास उत्पन्न होने लगता है। इसी प्रकार जब नेत्र-इन्द्रिय किसी विषय के साथ सम्बन्धित नहीं होती, तब भी इसके अन्दर स्वयं अपनी गति होती रहती है, परन्तु वह गति विशेष संकोच-विकासवाली नहीं होती; हाँ, जब वह विषय से प्रतिबिम्बित होती है, तब इसमें भी संकोच-विकास विशेष रूप से होने लगता है; इसी प्रकार अन्य ज्ञान तथा कर्म-इन्द्रियों में भी।

जब इन्द्रियों के मण्डल पर अभ्यासी दर्शनार्थ अभ्यास करता है, तो प्रत्येक इन्द्रिय के मण्डल को भिन्न-भिन्न रूप, आकार, क्रिया और ज्योतिवाला देखता है। कभी सर्वथा श्वेत हीरे के समान आभावाला, कभी सूर्य के समान आभावाला, कभी कुछ काला अथवा नीलेपन को लिये हुए। क्योंकि प्रत्येक गुण (सत्त्व, रजः, तमः) परिणत होता रहता है अतएव इन पदार्थों की ज्योतियाँ (स्वरूप) भी परिणत होती रहती हैं। जिस समय मन के अन्दर स्वच्छ, निर्मल श्वेत आभा होती है, जैसी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

कि हीरे से आभा निकलती है या अत्यन्त चमकते नक्षत्र-सी ज्योति प्रतीत होती है—उससे भी सहस्रों गुणा चमकती हुई आभा प्रतीत होने लगती है।

जब संकोच-विकास का अभाव हो, तो उस समय मन को सत्त्व-प्रधान समझना चाहिए। जब मन में अत्यन्त देदीप्यमान सूर्य के समान आभा हो और वह किञ्चित् रक्ताभ या पीतवर्ण लिये हुए हो और संकोच-विकास-क्रिया वर्तमान हो, तो मन को रजस्-प्रधान समझना चाहिए। जिस समय कुछ अन्धकार या धुंधलापन दिखाई दे और बाह्य संकोच-विकास का अभाव हो, तब मन को तमस्-प्रधान समझना चाहिए। क्योंकि मन त्रिगुणात्मक है, इसलिए प्रत्येक गुण का परिवर्तन होता रहता है; इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों में भी।

यह सूक्ष्म विज्ञान का अति-इन्द्रिय विषय ऐसा चल रहा है कि यदि मैं अन्तर्मुख होता हूँ, तो लेखनी बन्द हो जाती है और बहिर्मुख वृत्ति में लिखता हूँ तो वह अनुभव लेखनी में नहीं आता। अतएव वह स्वयं ही अनुभव करने योग्य है अथवा किसी उच्च कोटि के योगी द्वारा अनुभव कराने योग्य है।

ब्रह्मरन्ध्र के पदार्थ

इस ब्रह्मरन्ध्र में १७ पदार्थ मुख्य रूप से हैं—

(१) बुद्धि, (२) मन, (३) ५ ज्ञानेन्द्रिय, (४) ५ कर्मेन्द्रिय, (५) ५ तन्मात्रा। इन्हीं १७ तत्त्वों का सूक्ष्म या लिंग-शरीर कहलाता है। इनका सम्बन्ध जीवात्मा के साथ तब तक बना रहता है, जब तक मोक्ष नहीं हो जाता।

स्थूल शरीर का जन्म-मरण सर्वदा होता रहता है। धर्म-अधर्म-संस्कार का वाहक यह लिंग-शरीर ही है। यदि पञ्चतन्मात्रा अथवा सूक्ष्म भूतों का प्रत्यक्ष करना हो, तो सूक्ष्म इन्द्रियों के मण्डलों के बाहरी या ऊपरी भाग में इन पञ्चतन्मात्राओं का प्रत्यक्ष ज्ञान योगी को हो जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

यद्यपि योगभाष्यकार व्यास भगवान् ने जिह्वा के अग्रभाग में

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

धारणा का अभ्यास करने से दिव्य रस का प्रत्यक्ष या अनुभव-ज्ञान कहा है, परन्तु हमारे विचार में बाह्य स्थूल इन्द्रियों के अग्रभाग में धारणा का अभ्यास करने से स्थूल भूतों के विषयों का प्रत्यक्ष होता है। सूक्ष्म-इन्द्रियाँ, जो ब्रह्मरन्ध्र में वर्तमान हैं, उन पर ध्यान द्वारा अभ्यास करने से दिव्य शब्द, स्पर्श आदि पंचतन्मात्राओं का प्रत्यक्ष होता है। यह विषय बहुत सूक्ष्म तथा गहन है। बहुत काल निरन्तर एकान्त और शान्त स्थान में रहकर अभ्यास करने में इन अतीन्द्रिय पदार्थों का विज्ञान प्राप्त होता है अथवा किसी उच्च कोटि के योगी के समीप रह-कर उसके आदेशानुसार अभ्यास करने से शीघ्र सफलता होती है।

इस ब्रह्मरन्ध्र के विषय में केवल सामान्य रूप से ही लेखनी द्वारा इस विज्ञान को लिखा गया है। विशेष विज्ञान, जो स्वयं समाधि अवस्था में प्राप्त होता है, वह लेखनी में नहीं आ सकता।

हृदय-देश में

पहले लिखा जा चुका है कि इस स्थूल शरीर में विज्ञान के दो ही मुख्य केन्द्र हैं—ब्रह्मरन्ध्र तथा हृदय। अब हम हृदय के विषय में कुछ अनुभव लिखते हैं।

हमारे अपने अनुभव से छः पदार्थ हृदय-देश में मुख्य रूप से वर्तमान हैं। इनका विज्ञान ब्रह्मरन्ध्र की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म है और ये पदार्थ भी ब्रह्मरन्ध्र के पदार्थों की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म हैं। वे छः पदार्थ ये हैं—

(१) सूक्ष्म प्राण, (२) अहंकार, (३) चित्त अथवा अन्तःकरण, (४) जीवात्मा, (५) प्रकृति, और (६) ब्रह्म।

जिस प्रकार दिव्य ज्योतियुक्त ब्रह्मरन्ध्र के मण्डल हैं, उसी प्रकार दिव्य ज्योतियुक्त ये पदार्थ भी मंडलों के आकार में हैं। सम्भव है, आप यह शंका करें कि आपने ब्रह्म को भी एकदेशीय मंडल के रूप में या सावयव-पदार्थ कथन कर दिया है। इसका उत्तर यह है कि ब्रह्म एकदेशीय या सावयव-पदार्थ नहीं है, वह तो सर्वत्र परिपूर्ण निरवयव व्यापक रूप से वर्तमान है। यहाँ केवल अन्तःकरण-विशिष्ट ब्रह्म ही

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

का निरूपण किया जा रहा है, जैसे कि घटाकाश या मठाकाश का निरूपण किया जाता है।

अन्तःकरण-विशिष्ट ब्रह्म का मंडल के रूप में वर्णन किया गया है अन्यथा ब्रह्म तो सर्वत्र परिपूर्ण रूप से एक ही समान है; क्योंकि हृदय-देश में उसका अनुभव होता है, इसलिए विचार के लिए हृदय-विशिष्ट मंडल कह दिया है। हृदय ही एक ऐसा स्वच्छ-निर्मल स्थान है, जहां कि ब्रह्म की प्रतीति सम्यक् प्रकार से की जा सकती है; क्योंकि ब्रह्म और अन्तःकरण का व्याप्य-व्यापक भाव-सम्बन्ध है, जैसे सूर्य की आभा पाषाण पर भी पड़ती है और दर्पण पर भी पड़ती है, परन्तु दर्पण में प्रत्यक्ष रूप से उस आभा की प्रतीति होती है और पाषाण में नहीं, इसी प्रकार दोनों आत्माओं (जीवात्मा और परमात्मा) की प्रतीति या अनुभूति अथवा प्रत्यक्ष विज्ञान इस हृदय-देश में ही हो सकता है। यह प्रतीति और अनुभव ऐसा ही है, जैसे सूर्य को आकाश में देख रहे हैं। परन्तु उसे देखने से सूर्य का पूर्वापर ज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार हृदय में भी हृदय-विशिष्ट ब्रह्म की प्रतीति होती है, सम्पूर्ण रूप से नहीं।

हृदय-देश में सर्वप्रथम मण्डल ब्रह्म का है। दूसरा प्रकृति का है। तीसरा मण्डल जीव का है। चौथा अन्तःकरण का है। पाँचवाँ अहंकार का और छठा सूक्ष्म प्राण का है। ब्रह्म का मंडल प्रकृति तथा पदार्थों के मण्डलों को व्याप्त करके ठहरा हुआ है। यह जो प्रकृति का मण्डल है, इसी को कारण-शरीर भी कहते हैं। जीवात्मा का और इसका अनादि काल से सम्बन्ध चला आ रहा है। इस सम्बन्ध का हेतु अविद्या है।

ब्रह्म विभु, व्यापक, निरवयव और सर्वदेशीय है। प्रकृति भी एक प्रकार से सर्वत्र व्यापक रूप से वर्तमान है, परन्तु ब्रह्म की व्यापकता के समान इसकी व्यापकता नहीं है। अन्तर यह है कि ब्रह्म चेतन है और प्रकृति जड़ है।

जीवात्मा एकदेशीय, सूक्ष्म और नाना है। जिस प्रकार ब्रह्म के व्यापकता-रूप-सम्बन्ध से सर्वत्र प्रकृति में क्रिया वर्तमान रहती है, उसी प्रकार प्रकृति का कार्य अन्तःकरण है, उसके साथ जीवात्मा का सम्बन्ध

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होने से अन्तःकरण में भी क्रिया वर्तमान रहती है।

अन्तःकरण और जीवात्मा का बिम्ब-बिम्बीभाव सम्बन्ध है। अन्तः-करण पर जीवात्मा का आभास पड़ने से इस अन्तःकरण में दो शक्तियाँ पैदा होती हैं—ज्ञान तथा क्रिया। फिर इस ज्ञान-रूपी शक्ति के चार विभाग हैं—(१) चित्त, (२) अहंकार, (३) बुद्धि, और (४) मन।

बहुत-से आचार्यों ने बुद्धि का समावेश चित्त में ही कर दिया है। उस अवस्था में तीन प्रकार की अन्तःकरण से प्रतिबिम्बित जो दूसरी शक्ति क्रिया है, उसको सूक्ष्म प्राण कहा जाता है। इस प्रकार से वह ज्ञान तथा क्रिया-शक्ति अन्तःकरण की दो वृत्तियाँ भी कही जा सकती हैं। इस क्रिया-रूप शक्ति का दूसरा नाम जीवनी शक्ति भी है, क्योंकि शरीर में यही जीवन का संचार करती है। इस क्रिया-रूप शक्ति का ही पाँच प्रकार के प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान तथा उपप्राणों के रूप में भी कथन किया गया है। अन्तःकरण पर जो जीवात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, उस प्रतिबिम्ब से अन्तःकरण में जो क्रिया उत्पन्न होती है, उस क्रिया को ही जीवनी शक्ति, क्रिया-रूप प्राण कहा गया है।

सूक्ष्म प्राण कोई भौतिक पदार्थ अर्थात् वायु से उत्पन्न हुआ नहीं है। रजस्-प्रधान पंचभूतों से भी इनकी उत्पत्ति नहीं है। यह जीवात्मा से प्रतिबिम्बित अन्तःकरण की हरकत-विशेष या क्रिया-विशेष अथवा वृत्ति-विशेष ही का नाम प्राण है। अतएव सांख्यकर्ता कपिलाचार्य ने दूसरे अध्याय के ३१वें सूत्र में कहा है—

सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च।

अर्थात्, सामान्य अन्तःकरण का जो परिणाम-भेद है, उस परिणाम-रूप वृत्ति-विशेष का नाम ही पाँच प्राण है।

अभ्यासी को चाहिए कि वह ध्यान के द्वारा हृदय-देश में प्रवेश करके, प्रथम प्राण के मंडल पर अभ्यास करे। हृदय-देश में ब्रह्मरन्ध्र की अपेक्षा छोटा आकाश है। उसी में ये छः पदार्थ वर्तमान रहते हैं। जीवात्मा और अन्तःकरण के प्रतिबिम्बित होने से उस हृदयाकाश से ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति पैदा होकर ज्ञान तथा जीवन का संचार

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

सारे शरीर में हो जाता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह हृदय-कोष अर्ध-विकसित कमल की भाँति है, जो कि उरुस्थल के मध्य में वाम पार्श्व की ओर मेरुदण्ड और सुषुम्णा के अग्रभाग में है। इसी के मध्य में वास्तव में जीवात्मा का निवास है।

जीवात्मा के अन्त:करण पर प्रतिबिम्बित होने पर 'अहमस्मि' इस प्रकार का बोध होता है। 'अहमस्मि' के बोध के साथ ही जीवन-शक्ति का संचार हो जाता है। जीवन-संचार उत्पन्न होकर सारे शरीर में व्याप्त-सा हो जाता है, जिस प्रकार सूर्य की रश्मियाँ सूर्यमण्डल से निकलकर, सर्वत्र आकाश-मण्डल में फैल जाती हैं। इस प्राण-मण्डल पर अभ्यास करके अभ्यासी को इसका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इसके पश्चात् अहंकार के मण्डल पर अभ्यास करना होगा, जो कि अन्त:करण के अत्यन्त समीप है और अन्त:करण ही का दूसरा परिणाम है। वह अन्त:करण भी समष्टि-महत्तत्त्व का एक अंश-विशेष ही है। इस अहंकार-रूप मण्डल पर ध्यान द्वारा समाधि में स्थित होकर अहंकार का प्रत्यक्ष करना चाहिए। तव जिस अन्त:करण पर जीवात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, उसका साक्षात्कार करना होगा।

कुछ आचार्य पाँच प्रकार का अन्त:करण कहते हैं—(१) अन्त:करण, (२) चित्त, (३) अहंकार, (४) बुद्धि, और (५) मन। वास्तव में अन्त:-करण एक ही है, परन्तु व्यापार-भेद से इसके भिन्न भिन्न नाम कथन किये गये हैं। अन्त:करण पर जीवात्मा की आभा पड़ रही है, जिससे वह जाज्वल्यमान अन्त:करण संकोच-भाव को प्राप्त होकर ज्ञान तथा कर्म को प्रारम्भ करता है। इस अवस्था में इसके दर्शन करने से जो महान् आनन्द उपलब्ध होता है, वह वाणी अथवा लेखनी से वर्णन करना नितान्त असम्भव है।

क्योंकि यह जीवात्मा का अत्यन्त समीपवर्ती पदार्थ है और यही जीवात्मा के बन्ध का हेतु बना हुआ हैं, अत: इस पर अभ्यास करने से इसके निकटवर्ती जीवात्मा का भी अनुभव होने लगता है; अर्थात् जीवात्मा और अन्त:करण का पार्थक्य-भेद पदार्थ रूप से प्रतीत होने

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लगता है। इसी जीवात्मा के प्रतिबिम्बित होने से इस अन्त:करण में भी एक प्रकार की चेतनता-सी पैदा हुई है। इस अन्त:करण का जीवात्मा के साथ अनादि काल से सम्बन्ध चला आ रहा है और मोक्ष-पर्यन्त बना रहेगा।

जैसे एक आतिशी शीशे (बृंहण यन्त्र) पर सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ने से समीप के वस्त्र आदि को वह जलाने लगता है, उसी प्रकार जीवात्मा का आभास पड़ने से अन्त:करण में ज्ञान और क्रिया उत्पन्न होते हैं। जिस समय जीवात्मा शरीर को छोड़कर गमन करता है, ज्ञान, कर्म-इन्द्रिय तथा मन और बुद्धि के मण्डल इस अन्त:करण में आकर समाविष्ट हो जाते हैं। यह ज्योतिर्मय अन्त:करण जीवात्मा के ज्ञानरूप प्रकाश से ही प्रकाशित हो रहा है।

यद्यपि इसमें स्वभावरूप से अपना भी प्रकाश है, तथापि यह विशेष प्रकाश जीवात्मा ही के प्रतिबिम्ब से प्राप्त करता है। जीवात्मा का प्रकाश इसकी अपेक्षा महान् है, जैसे सूर्य के समक्ष एक दीपक का प्रकाश।

इसी अन्त:करण में जन्म-जन्मान्तर के संस्कार या वासना ओत-प्रोत होकर रहते हैं। बहुत-से आचार्यों ने इसी अन्त:करण या चित्त को ही आत्मा मान लिया है। जो लोग जड़ और चेतन, ब्रह्म के दो गुण मानते हैं, उन्हीं को इस अन्त:करण और जीव में ब्रह्म की भ्रांति हो गई है।

इसी जीवात्मा के अन्त:करण पर प्रतिबिम्बित होने से इस सारे शरीर का व्यवहार चल रहा है। जिस समय इस अन्त:करण की सब वृत्तियों का निरोध हो जाता है, यह अन्त:करण अपनी कारण प्रकृति में विलीन हो जाता है। यह प्रकृति का ही कारण शरीर के नाम से प्रतिपादन किया गया है।

जिस प्रकार जीवात्मा के सम्बन्ध से अन्त:करण में सर्वदा व्यापार बना रहता है और इस व्यापार का मोक्ष के अतिरिक्त किसी भी अवस्था में अभाव नहीं होता—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और समाधि में भी व्यापार बना रहता है—उसी प्रकार ब्रह्म और प्रकृति के सम्बन्ध से

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रकृति में भी क्रिया बनी रहती है। किसी भी काल में क्रिया का अभाव नहीं होता, क्योंकि ब्रह्म और प्रकृति का व्याप्य-व्यापक-भाव से नित्य सम्बन्ध है। ब्रह्म की व्यापकता का अभाव किसी भी काल में नहीं होता। न हुआ, न है, और न होगा। अतएव सर्वदा सम्बन्ध रहने से क्रिया भी सर्वदा रहनी चाहिए।

प्रलयकाल की साम्य-अवस्था में केवल क्रिया का ऐसा ही अभाव होता है। जैसे कि सुषुप्तिकाल में जीवात्मा को बाह्य ज्ञान-कर्मेन्द्रियों के व्यापार का अभाव होता है, परन्तु निद्राकाल में अन्तःकरण की क्रिया का अभाव नहीं होता, इसी प्रकार प्रलयकाल में भी प्रकृति में सूक्ष्म क्रिया नहीं रहती है; क्रिया का सर्वथा अभाव नहीं होता, क्योंकि चेतन ब्रह्म का व्यापकतारूप सम्बन्ध उस समय भी बना हुआ है।

अन्तःकरण की सब वृत्तियों का निरोध होने पर सम्प्रज्ञात समाधि की अन्तिम अवस्था होती है। अनादि काल के जो संचित कर्म और उनकी वासनाएं हैं, वे भी इस चित्त के साथ प्रकृति-रूप कारण में विलीन हो जाती हैं। उस समय जीवात्मा की स्व-स्वरूप में स्थिति अथवा मोक्ष प्राप्त होता है; परन्तु इस तत्त्वज्ञान या मोक्ष में ज्ञान और वैराग्य ही मुख्य हेतु हैं। तत्त्वज्ञान के पश्चात् प्रकृति और इसके सब कार्यों से परम वैराग्य होकर मोक्ष होता है। अतएव अभ्यासी को सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात-समाधि में सब पदार्थों का साक्षात्कार कर लेना चाहिए। तभी परम वैराग्य उत्पन्न होगा। जब तक किसी पदार्थ के दोष, गुण और स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, तब तक उससे वैराग्य उत्पन्न नहीं होता।

अन्तःकरण का प्रत्यक्ष होने पर योगी को उसके कारण-रूप प्रकृति का भी समाधि द्वारा प्रत्यक्ष करना चाहिए, क्योंकि परम्परागत—जीवात्मा के बन्धन का मुख्य हेतु—उपादान-कारण प्रकृति ही है। यह प्रकृति का मण्डल इन चारों मण्डलों को आच्छादित-सा करके रहता है क्योंकि यह मण्डल चारों की अपेक्षा महान् है और यही जीवात्मा का कारण-शरीर है। जैसे पंच-तन्मात्राओं का मण्डल, लिंग-शरीर का कोष होता है, उसी प्रकार यह अन्तःकरण-विशिष्ट प्रकृति का मण्डल,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

शरीर के रूप में जीवात्मा के प्रति कोष के समान होता है। इसका अभाव मोक्ष में जाकर होगा और यही मुख्य रूप से अनादि काल से जीवात्मा के बन्धन का हेतु चला आ रहा है।

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इस प्रकृति के मण्डल के ऊपर ब्रह्म का मण्डल इन पाँचों मण्डलों को व्याप्त करके ठहरा हुआ है। यद्यपि ब्रह्म का कोई मण्डल इत्यादि तो हो नहीं सकता, क्योंकि वह सर्व-व्यापक है; परन्तु हृदयाकाश-स्थित ब्रह्म का मण्डल के रूप में वर्णन किया है। प्रकृति के मण्डल का भी व्यष्टि के रूप में वर्णन किया गया है। इस शरीर में जितने भी पदार्थ हैं, वे सब व्यष्टि-रूप से वर्तमान हैं, अतएव योगी को प्रथम समाधि द्वारा व्यष्टि पदार्थों का साक्षात्कार करके पुनः समष्टि पदार्थों का साक्षात्कार करना चाहिए, क्योंकि ये व्यष्टि और समष्टि, दोनों ही बन्धन के हेतु हैं।

जब योगी को व्यष्टि और समष्टि पदार्थों का विवेक हो जाय तब उसके पश्चात् जीवात्मा और ब्रह्म का तत्त्वज्ञान पैदा होता है। क्योंकि अन्तःकरण जड़ है, इसलिए वह अपने कार्य-कारण आत्मिक पदार्थों के प्रत्यक्ष कराने में साधनभूत हो सकता है, आत्मा के प्रत्यक्ष में नहीं; क्योंकि जड़ से चेतन का ज्ञान नहीं हो सकता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार का चेतन जीवात्मा है, उसी प्रकार का चेतन ब्रह्म है। एक चेतन का ज्ञान होने के साथ ही उसके समानजातीय चेतन ब्रह्म का ज्ञान भी हो जाता है। उस समय चेतन ब्रह्म के जाननें के लिए किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अन्तः-करण का अभाव हो चुका है। जिस कारण के द्वारा प्राकृतिक पदार्थों का साक्षात्कार किया है, वह कारण अब रहा भी नहीं और न ही वह जड़ कारण चेतन कोप्रत्यक्ष करा सकता था; क्योंकि ब्रह्म तो सर्वथा ज्ञात विषय है। वह पहले भी अज्ञात नहीं था; जीवात्मा के बन्धन-हेतु तो केवल प्रकृति और उसके कार्य थे। उनका सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका है, इसलिए अब बीच में कोई पर्दा नहीं रहा। माया (प्रकृति) का पर्दा अब फट या टूट गया है, तो अब ब्रह्म के प्रत्यक्ष होने में कोई रुकावट या बाधा भी नहीं रही। बस, यही जीवात्मा का मोक्ष और ब्रह्मज्ञान है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

यह अध्यात्म-विद्या अत्यन्त गहन और सूक्ष्म है, परन्तु इसके द्वारा
Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
ही प्रकृति और उसके कार्यों का विज्ञान तथा उससे परम वैराग्य होकर आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होता है। आत्म-ज्ञान तथा ब्रह्म-ज्ञान ही मनुष्य-जीवन का वास्तविक उद्देश्य है और यह मनुष्य-जीवन ही में प्राप्त किया जा सकता है। सांसारिक भोग तो दूसरी योनियों में भी भोगे जा सकते हैं, परन्तु यह मनुष्य-देह ही एक ऐसा है जिसमें तत्त्व-ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

मनुष्य-मात्र को चाहिए कि वह इस अमूल्य जीवन को प्राप्त करके व्यर्थ नष्ट न करे। आत्म-ज्ञान के लिए कटिबद्ध होकर प्रयत्न करे। तभी दुःखों से छुटकारा हो सकता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि संसार के अधिकांश लोग प्रायः भोगों का उपार्जन करने में ही सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं! यथार्थ सुख तथा सच्ची शान्ति और आत्म-ज्ञान अथवा ब्रह्म-ज्ञान के लिए तो वे यत्न ही नहीं करते। चेतो! संसारी जीवो! चेतो!

॥ ओ३म् तत्सत् ॥

□ □

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

महाभारतम्

महाभारत धर्म का विश्वकोश है। व्यासजी महाराज की घोषणा है कि जो कुछ यहाँ है, वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं है वह कहीं नहीं है। इसकी महत्ता और गुरुता के कारण इसे पञ्चम वेद कहा जाता है।

वेद को छोड़कर सभी वैदिक ग्रन्थों में प्रक्षेप हुए हैं। महाभारत भी इस प्रक्षेप से बच नहीं सका। महाभारत की श्लोक संख्या बढ़कर एक लाख पहुँच गई। इसमें असम्भव गप्पों, अश्लील कथाओं, विचित्र उत्पत्तियों, अप्रासाङ्गिक कथाओं को ठूँसा गया। इतने बड़े ग्रन्थ को पढ़ना कठिन हो गया।

आर्यजगत् के ही नहीं भारत के प्रसिद्ध विद्वान्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ने महाभारत का एक विशिष्ट संस्करण तैयार किया है।

इस ग्रन्थ में असम्भव, अश्लील और अप्रासांगिक कथाओं को निकाल दिया गया है। लगभग १६,००० श्लोकों में सम्पूर्ण महाभारत पूर्ण हुआ है। श्लोकों का तार-तम्य इस प्रकार मिलाया गया है कि कथा का सम्बन्ध निरन्तर बना रहता है।

☐ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की, संस्कृति और सभ्यता की, ज्ञान-विज्ञान की, आचार-व्यवहार की गौरवमयी झाँकी देखना चाहते हैं,

☐ यदि योगिराज कृष्ण की नीतिमत्ता देखना चाहते हैं,

☐ यदि प्राचीन समय की राज्य-व्यवस्था की झलक देखना चाहते हैं,

☐ यदि आप जानना चाहते हैं कि क्या कौरवों का जन्म घड़ों में से हुआ था? क्या द्रौपदी का चीर खींचा गया था, क्या एकलव्य का अँगूठा काटा गया था, क्या युद्ध के समय अभिमन्यु की अवस्था सोलह वर्ष की थी, क्या कर्ण सूतपुत्र था, क्या जयद्रथ को धोखे से मारा गया आदि

☐ यदि आप भ्रातृप्रेम, नारी का आदर्श, सदाचार, धर्म का स्वरूप, गृहस्थ का आदर्श, मोक्ष का स्वरूप, वर्ण और आश्रमों के धर्म, प्राचीन राज्य का स्वरूप आदि के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं, तो एक बार इस ग्रन्थ को पढ़ जाइए।

विस्तृत भूमिका, विषय-सूची, श्लोक-सूची आदि से युक्त इस महान् ग्रन्थ का मूल्य है केवल ६०० रुपये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

चन्द्रगुप्त के महामन्त्री चाणक्य प्रणीत

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चाणक्यनीतिदर्पणः

भारतीय और पाश्चात्य सभी विद्वान् चाणक्यजी की कूटनीति का लोहा मानते हैं।

चाणक्य नीति पर हिन्दी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं में सैकड़ों टीकाएँ लिखी गई हैं परन्तु वे केवल संक्षिप्त भावार्थ मात्र हैं

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अब तक कोई विस्तृत भाष्य नहीं लिखा गया था।

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ने इस पर भाष्य लिखकर इस कमी को पूरा कर दिया है।

आचार्य उदयवीरजी शास्त्री ने पुस्तक की पाण्डुलिपि का अवलोकन कर इस ग्रन्थरत्न की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

लगभग ३०० पृष्ठ के ग्रन्थ का मूल्य केवल ५०.००

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

☐ यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झाँकी देखना चाहते हैं,

☐ यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते है,

☐ यदि आप प्राचीन राज्य-व्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं,

☐ यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं,

☐ यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं,

☐ यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं,

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त। मूल्य रु० १००.००

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

महात्मा आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

महामन्त्र
दो रास्ते
तत्त्वज्ञान
प्रभु-दर्शन
प्रभु-भक्ति
बोध कथाएँ
सुखी गृहस्थ
मन की बात
एक ही रास्ता
घोर घने जंगल में
मानव जीवन गाथा
भक्त और भगवान्
प्रभु-मिलन की राह
शंकर और दयानन्द
आनन्द गायत्री कथा
उपनिषदों का सन्देश
मानव और मानवता
यह धन किसका है ?
देश-भक्ति प्रभु-भक्ति
वैदिक सत्यनारायण व्रत कथा
दुनिया में रहना किस तरह ?
श्री म० आनन्द स्वामी सरस्वती जीवना (उर्दू)
म हा मं त्र (उर्दू)
Gayatri Discourses (अंग्रेजी)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत

वेद सौरभ

शिव संकल्प

दिव्य दयानन्द

ब्रह्मचर्य गौरव

ऋग्वेद शतकम्

चतुर्वेद शतकम्

यजुर्वेद शतकम्

सामवेद शतकम्

अथर्ववेद शतकम्

घरेलू औषधियाँ

यजुर्वेद - सूक्तियाँ

कुछ करो कुछ बनो

बाल्मीकि रामायण

सामवेद - सूक्ति सुधा

ऋग्वेद का अक्ष - सूक्त

वेद - सौरभ (संक्षिप्त)

मर्यादा पुरुषोत्तम राम

वैदिक उदात्त भावनाएँ

विद्यार्थियों की दिनचर्या

गोविन्दराम हासानन्द

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

वेद-मीमांसा

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

पाश्चात्य विद्वानों ने वेद के विकृत रूप को प्रचारित करने का षड्यन्त्र किया। तरह-तरह की भ्रान्तियां हमारे भारतीय विद्वानों ने भी प्रसारित कीं। आर्यसमाज की ओर से युक्तियुक्त उत्तर समय-समय पर दिये जाते रहे।

सभी प्रकार की भ्रान्त धारणाओं को दूर कर वेद के यथाथ स्वरूप से अवगत कराने के उद्देश्य से ही इस वेद-मीनांसा की रचना विद्वान् लेखक ने सूत्र की शैली में करके उसका भाष्य किया है। मूल्य ५०.००

पुस्तक पर महत्वपूर्ण सम्मति—

वेद-मीमांसा का वैशिष्ट्य शब्दों द्वारा दर्शा सकना सम्भव नहीं है। उसके आद्योपान्त मनन द्वारा ही उसका महत्व जाना जा सकता है। ग्रन्थकार के व्यापी अनुसन्धान और गम्भीर वैदुष्य की छाप प्रत्येक विषय के प्रतिपादन में पाई जाती है।

—वेदभाष्यकार प्रो० विश्वनाथ विद्यामार्त्तण्ड

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हैं तो—गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य

लेखक—सुनील शर्मा

१. घर का वैद्य आंवला	३.५०	११. घर का वैद्य दूध-घी	३.५०
२. घर का वैद्य नीम	३.५०	१२. घर का वैद्य दही-मट्ठा	३.५०
३. घर का वैद्य गन्ना	३.५०	१३. घर का वैद्य नमक	३.५०
४. घर का वैद्य प्याज	३.५०	१४. घर का वैद्य हल्दी	३.५०
५. घर का वैद्य लहसुन	३.५०	१५. घर का वैद्य हींग	३.५०
६. घर का वैद्य नीबू	३.५०	१६. घर का वैद्य बेल	३.५०
७. घर का वैद्य तुलसी	३.५०	१७. घर का वैद्य बरगद	३.५०
८. घर का वैद्य पीपल	३.५०	१८. घर का वैद्य मूली	३.५०
९. घर का वैद्य आक	३.५०	१९. घर का वैद्य गाजर	३.५०
१०. घर का वैद्य सिरस	३.५०	२०. घर का वैद्य अदरक	३.५०

बीसों पुस्तकें चार सुन्दर जिल्दों में १४०.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

महात्मा आनन्द स्वामी कृत

उत्प्रेरक पुस्तकें

महामन्त्र

तत्त्वज्ञान

दो रास्ते

प्रभु-दर्शन

प्रभु-भक्ति

बोध कथाएं

सुखी गृहस्थ

मन की बात

एक ही रास्ता

घोर घने जंगल में

मानव जीवन गाथा

भक्त और भगवान्

प्रभु-मिलन की राह

शंकर और दयानन्द

आनन्द गायत्री कथा

उपनिषदों का सन्देश

मानव और मानवता

यह धन किसका है ?

दुनिया में रहना किस तरह ?

वैदिक सत्यनारायण व्रत कथा

Gayatri Discourses (अंग्रेजी)

श्री म० आनन्द स्वामी जीवनी (जीवनी), (उर्दू)

गोविन्दराम हासानन्द ४४०८ नई सड़क, दिल्ली

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida